भक्ति के नियम

१. भगवान् की भक्ति का प्रचार करना, गो रक्षण और उसके लिए गोचर भूमि छुड़वाना, जलाशय बनवाना, मनुष्य मात्र के लिए शिक्षा का प्रचार करना. वैदिक अनुभूत औषधियों का प्रचार करन, ग्रामों में परस्पर के झगड़े और वैमनस्य मिटा कर शान्ति व प्रेम बढ़ाना, सब संस्थाओं में भगवद्भक्ति और धर्म का भाव जाग्रत करना, राजा और प्रजा व ही का हित चिन्तन करना।

२. यह पत्र प्रतिमास की पूर्णिमा को प्रकाशित हुआ करेगा।

३. अग्रिम वार्षिक चन्दा सर्व साधारण से २) होगा

४. जो महानुभाव २५) रुपया देंगे वह पत्रके संरक्षक और ५) देने वाले सहायक होंगे

५. बाहर का कोई भी व्यापारिक विज्ञापन नहीं लिया जायगा।

६. लेखोंको प्रकाशित करना, न करना, घटाना, व बढ़ाना सर्वथा सम्पादक के अधिकार में होगा

७. लेख सम्बन्धी पत्र व्यवहार सम्पादक के नामसे और प्रबन्ध सम्बन्धी पत्र व्यवहार मैनेजर भक्ति के नाम से होना चाहिए

८. जिन ग्राहकों के पास जिस मास की "भक्ति" न पहुंचे, उनको स्थानीय पोस्ट आफिस में पूछ कर उस मास की अमावस्या से पूर्व कार्यालय में सूचना भेजनी चाहिये स्थानीय पोस्ट आफिस में विना पड़ताल किये अथवा अमावस्या के बाद सूचना आने पर "भक्ति" नहीं भेजी जायगी

९. पत्रोत्तर के लिये जवाबी, कार्ड भेजना चाहिये।

विषय सूची।

विषय	लेखक	पृष्ठ
१. वेदोपदेश		२८५
२. पुराण गाथा	[ले० श्रीस्वामी भोले बाबाजी	२८६
३. कैवल्यो पनिषद्		२९२
४. काम एकहु नसरिये (कविता)	[ले० श्री गोविन्द राम जी	२९३
५. सदुपदेश	[ले० श्रीराम सेवकसिंह 'श्याम'	२९४
६. मनोनिग्रह	[ले० श्री प्रभुदेव ब्रह्मचारी आश्रम	२९५
७. कैसे (कविता)	[ले० श्रीमदन गोपाल जी सिंहल	२९६
८ सार्व भौम योग	[ले० श्री पं० शिव प्रसाद जी शास्त्री	२९६
९. भक्ति भावना (कविता)	[ले० श्री रसिकेन्द्र कवीन्द्र कुटीर	३०४
१०. सुख व शान्ति	[ले० श्री स्वामी कृष्णानन्द जी सरस्वती	३०४
११. भगवद्भक्ति	[ले० श्री पूज्य स्वामी भोले बाबाजी	३०६
१२. प्रभुके होलाओ	[ले० श्री स्वामी आत्मानन्द जी	३१३
१३. प्राप्ति स्वीकार	[सम्पादक	३१५
१४. होली	[ले० श्री मदन गोपाल जी सिंहल	३१५
१५. भजन		३१६

REGD. No. L. 2077

भक्ति प्रेस में मिलने वाली पुस्तकें।

१. भगवद्गीता संस्कृत तथा भाषा टीका सहिता	मूल्य	॥=)
२. भगवद्गीता दशम अध्याय पर्यन्त ...	"	।-)
३. वेदोपनिषद्	"	-)
४. अष्टोत्तरशतमन्त्रमाला	"	-)।
५. ज्ञानधर्मोपदेश	"	-)॥।
६. भक्ति ज्ञान योग संग्रह	"	=)॥
७. सत्य शब्द संग्रह (गुटका)	"	।)
८. सत्य शब्द संग्रह	"	।≡)
९. शब्दसंग्रह	"	-)
१०. सारसंग्रह	"	≡)
११. भाषा फक्किका प्रकाश	"	।=)
१२. भगवद्भक्तांक	"	॥-)
१३. भगवदंक	"	॥।)
१४. गद्यांक	"	१)

नोटः-एक रुपये से कम मूल्य की पुस्तक मंगाने वालों को डाक महसूल सहित टिकट भेजने चाहियें।

मिलने का पताः-

श्री भगवद्भक्ति आश्रम, रेवाड़ी।

मुद्रक तथा प्रकाशक प्रेमानन्द ब्रह्मचारी "भक्ति प्रेस" भगवद्भक्ति आश्रम, रेवाड़ी।

वन्दन-भक्त — अक्रूरजी

GITA PRESS, GORAKHPUR

जनता में भगवद्भक्ति भाव को जाग्रत करने वाली सचित्र मासिक पत्रिका।

वर्ष ५ | श्री भगवद्भक्ति आश्रम रेवाड़ी, फाल्गुन पूर्णिमा सं० १९८७ | अङ्क ६

वेदोपदेश

अहमेव स्वयमिदं वदामि जुष्टं देवेभिरुत मानुषेभिः।
यं कामये तं तमुग्रं कृणोमि तं ब्रह्माणं तमृषिं तं सुमेधाम् ॥ १ ॥

हे मनुष्यो! मैं स्वयं तुमको यह विज्ञान देती हूं। विद्वानों और साधारण मनुष्यों से ब्रह्मात्मक वस्तु सदा सेवित और सेव्य है उसका उपदेश मैं स्वयं देती हूं। जिस २ को मैं चाहती हूं उस २ को उग्र करती हूं मैं उस२ को ब्रह्मवित् उस२ को ऋषि और उस२ को सुमेधावी बनाती हूं ॥ १ ॥

अहं रुद्राय धनुरातनोमि ब्रह्मद्विषे शरवे हन्तवा उ।
अहं जनाय समदं कृणोमि अहं द्यावापृथिवी आविवेश ॥ २ ॥

दुष्टों के संहारकर्ता राजा के अस्त्र शस्त्रों को अच्छे प्रकार मैं ही जानती हूं, निश्चय मैं ही वेद और ईश्वर द्वेषी के और हिंसक क्रूर पुरुषों के हनन के लिये अस्त्र धारण करती हूं। मैं स्वयं भक्तजन के लिये संग्राम करती हूं, मैं द्यावा पृथिवी में सर्वत्र व्यापिनी हूं ॥ २ ॥

अहं सुवे पितरमस्य मूर्धन् मम योनिरप्स्वन्तः समुद्रे ।
ततो वितिष्ठे भुवनानुविश्वा उतामूं द्यां वर्ष्मणोपस्पृशामि ॥ ३ ॥

"द्यौः पिता" इस श्रुति से सिद्ध है कि द्युलोक का नाम पिता है इस के ऊपर द्युलोक को मैं बनाती हूं व्यापक आकाश और समस्त जगत् में मेरा निवास स्थान है और मैं सम्पूर्ण भुवनों में अनुप्रविष्ठा हो के स्थिता हूं और मैं इस द्युलोक को लेकर निखिल जगत् का शरीर से स्पर्श कर रही हूं ॥३॥

अहमेव वात इव प्रवामि आरभमाणा भुवनानि विश्वा ।
परो दिवा पर एना पृथिव्या एतावती महिमा संबभूव ॥ ४ ॥

सम्पूर्ण भुवनों को आरम्भ करती हुई मैं ही वायु के समान सर्वत्र विशेष रूप से स्थिता हूं द्युलोक पर और इस पृथिवी पर वर्त्तमान होके स्थित हूं महान् महिमा से मैं एतावती सर्वत्र विद्यमाना हूं ॥ ४ ॥

पुराण-गाथा

[ले० श्री पूज्य स्वामी भोले बाबा जी]

सुख दुःखसमं धीरं रागद्वेष विवर्जितम् ।
आत्मस्थं सदा तुष्टं जीवन्मुक्तं नमाम्यहम् ॥

शिष्यः—हे भगवन् ! आपसर्वोत्तम व्याख्यान कर्ता हैं, आपके वचनामृत पान करने से चित्त में परम आल्हाद होता है, आज किसी परम भक्त की ऐसी रोचक कथा सुनाइये, जिसको सुन कर ज्ञान वैराग्य पूर्वक भगवत् के चरणों में प्रीति हो और रागद्वेषादि संतापकारक समस्त मल जल जांय।

शिष्य के ऐसे वचन सुनकर शिष्य का उत्साह बढ़ाते हुये दयालु गुरु इस प्रकार कहने लगेः—

गुरुः—हे प्रियदर्शन ! तू धन्य है, जो मुझ से परम भक्त की कथा पूछता है। भक्तों की कथायें संसार समुद्र से तारने के लिये जहाज रूप हैं।

सनकादि मुनि ध्यान छोड़ कर भक्तों की और भक्त वत्सल भगवान की कथायें सुनते हैं, तब दूसरों का तो कहना ही क्या है ? पापी से पापी को भी भक्तों की कथायें पवित्र कर देती हैं, तो अधिकारियों को पवित्र करें, इस में संशय ही क्या है ? वे ही महापुरुष धन्य हैं, जो सांसारिक चित्त विक्षेप कारक किस्से कहानियों को छोड़ कर हरि भक्तों की कथाओं में रत हैं ! उन्हीं का जीवन सफल है। जीने को तो वृक्ष भी जीते हैं, धौंकनी भी सांस लेती रहती है, पशु पक्षी भी पेट भरते रहते हैं, इनका जीना जीना नहीं है ! दिनभर दुनियांकी गप्पें

उड़ाना, रात को खटिया पर पड़ कर खर्राटे लेना तो सभी जानते हैं, ऐसे लोग अमूल्य मनुष्य जन्म को वृथा ही खोते हैं, अन्त में उनको पछताना ही पड़ता है। जो भाग्यवान् स्त्री पुरुष भगवत् और भगवद्भक्तों की कथायें सुन कर उन का आचरण करते हैं, वे जीवन पर्यन्त सुखी रहते हैं और अन्त में अखंड सुख प्राप्त करते हैं, ऐसे पुरुष ही मनुष्य जन्म को सार्थक कर लेते हैं। हे प्रियदर्शन! मैं तुझे बलि और इन्द्र की पुरातन कथा सुनाता हूं। जिस को सुन कर तुझे परम शान्ति प्राप्त होगी, ध्यान देकर सुन।

बलि और इन्द्र का संवाद।

जब वामन भगवान् ने तीनों लोकों को आक्रमण करके बलि का राज्य इन्द्र को दिलवा दिया, तब इन्द्र देवताओं का राजा हुआ, देवताओं का यज्ञ होने लगा और ब्राह्मणादि चारोंवर्ण व्यवस्था पूर्वक वर्तने लगे। ब्रह्म देव के प्रसन्न होने से तीनों लोक समृद्धिवान हुये। रुद्र, वसु, आदित्य, अश्विनी कुमार, ऋषि, गंधर्व, नाग, किन्नर, सिद्ध, चारण आदि साथ लेकर चार दांत वाले, शोभायमान हस्तीराज ऐरावत पर आरूढ इन्द्रराज तीनों लोकों की सैर करने को निकला। सैर करता हुआ इन्द्र एक दिन समुद्र के किनारे पर पहुंचा। वहां एक पर्वत की गुफा में विरोचन का पुत्र बलि बैठा हुआ था, इसको देख कर इन्द्र उसके पास गया। देवराज को ऐरावत पर चढा हुआ और देवताओं के समूह से घिरा हुआ परम ऐश्वर्य संपन्न देख कर दैत्यों के राजा बलि के मन में किंचित् भी मैल न आया, अपने शत्रु की राज लक्ष्मी को देख कर उसे रंचक भी शोक न हुआ और न किसी प्रकार का भय हुआ। बलि को देख कर गजराज पर बैठा हुआ इन्द्र इस प्रकार कहने लगा:-

इन्द्र-हे दैत्य! मुझ देवराज को देख कर तुझे शोक नहीं हुआ, इस का क्या कारण है? क्या अपने शौर्य के कारण तू निर्भय है? क्या वृद्धों की सेवा करने से तुझ में इतना धैर्य है? क्या अपने तप के कारण से तू निश्चिन्त रहता है? जैसा तेरा मन निर्विकार है, ऐसा निर्विकार मन रखना बहुत कठिन है! हे विरोचन पुत्र! शत्रुओं ने तुझे वश में कर लिया है, सर्वोत्तम तेरा स्थान छीन लिया गया है, कुल, स्त्री पुत्रादि से हीन अकेले सुंसान स्थान में तू बैठा हुआ है, फिर भी तुझे किसी प्रकार का शोक नहीं है, ऐसी कौन सी वस्तु तेरे पास है, जिसके आश्रय से तू निश्चिन्त है? पूर्व में तू स्वजातीय पुरुषों में सर्व से श्रेष्ठ पद को भोगता था, सर्वोत्तम भोग तुझे प्राप्त थे, अब शत्रुओं ने तेरे रत्न ले लिये हैं, राज्य भी छीन लिया है, फिर भी तू शोक नहीं करता प्रसन्न बैठा हुआ है, इसका क्या कारण है? अपने बाप दादाओं के राज्यासन पर तू पूर्व अधिकार चलाता था, अब उसी राज्यासन पर तेरे शत्रु आज अपना शासन चलाते हैं, फिर भी तू शोक क्यों नहीं करता? तुझे वरुण के पाश से बांधा, वज्र से मारा, तेरी स्त्रियां छीन लीं, तेरा धन लूट लिया, इतना होने पर भी तुझे शोक नहीं है! तेरी लक्ष्मी नष्ट हो गयी, तेरा वैभव भी जाता रहा, तो भी तुझे शोक नहीं है, यह महा दुष्कर कार्य है। तीनों लोकों का राज्य अपने अधिकार में से निकल जाने पर तेरे सिवाय दूसरा कौन जीता रहने का उत्साह करेगा! कोई भी जीना

न चाहेगा।! तू बड़ा निर्लज्ज है, जो सर्वस्व जाने पर भी अधीर नहीं होता!

बलि का तिरस्कार करके इन्द्र ने इसी प्रकार अनेक कठोर वचन कहे, परन्तु भगवद्भक्त विरोचन पुत्र बलि के मन में किंचित् भी क्षोभ न हुआ, सावधानी से सब सुनता रहा और मन में प्रसन्न होकर इस प्रकार सरल वाणी से उत्तर देने लगा:-

बलि:-हे इन्द्र! तूने मुझे अपने वश में तो कर ही लिया है, अब तू मेरे सामने अपनी बड़ाई करता है और मेरी निन्दा करता है, इसका क्या फल है? कुछ भी नहीं है! हे पुरंदर! मैं तुझे वज्र उठाये हुये खड़ा हुआ देखता हूं, मैं तेरा पूर्व का सब वृत्तांत जानता हूं, मेरे सामने अपना बखान मत कर! पूर्व में तू अत्यंत असमर्थ था, अब बहुत करने से तू इन्द्र हो गया है, तुझे ऐसी क्रूर वाणी बोलना उचित नहीं है, तेरी सी कठोर वाणी कोई विद्वान् तो बोलेगा नहीं! जो पुरुष समर्थ होकर भी वश में आये हुये पराक्रमी शत्रु के ऊपर दया करता है, उस को ही शिष्ट पुरुष 'पुरुष' कहते हैं। जहां दो मनुष्य विवाद रूप युद्ध करते हैं, वहां जय पराजय का निश्चय नहीं हो सक्ता, इन में से एक जय पाता है और दूसरे का पराजय होता है, हे देव श्रेष्ठ! तुझे ऐसा कहना योग्य नहीं है कि मैंने पराक्रम से सब प्राणियों के स्वामी को जीता है क्योंकि हे वज्रधारी इन्द्र! तू ने जो राज्य पद को पाया है और मैं पराजय प्राप्त करके इस दुर्दशा को प्राप्त हुआ हूं, यह मेरा अथवा तेरा कृत्य नहीं किन्तु यह सब दैवाधीन है। जैसा तू आज है, ऐसा मैं पूर्व में था और जैसा मैं आज हूं, ऐसा तू पीछे होगा, ऐसा समझ कर तू अपनी बड़ाई और मेरी अवज्ञा मत कर! तुझ से श्रेष्ठ पुरुष को ऐसा करना शोभा नहीं देता।

हे इन्द्र! काल चक्र सुख दुःख का कारण है, काल वश ही पुरुष सुख दुःख में पड़ता है। तुझे आज इन्द्रत्व जो प्राप्त हुआ है, वह काल क्रम से प्राप्त हुआ है, तेरे कृत्य से प्राप्त नहीं हुआ। जब मेरा उदय काल आवेगा, तब मुझे भी काल योग्य पद को प्राप्त करावेगा और तुझे भी काल योग्य पद पर पहुंचावेगा, इसलिये जैसा तू आज है, वैसा मैं नहीं हूं और आज जैसा मैं हूं, ऐसा तू नहीं है। माता पिता की सेवा, देवताओं का पूजन, शुभाचरण अथवा अन्य कोई गुण काल से पीड़ित मनुष्य को सुख नहीं दे सक्ता! काल से पीड़ित मनुष्य की रक्षा करने को विद्या, तप, दान, मित्र अथवा बांधव समर्थ नहीं होते। पुरुष चाहे करोड़ों उपाय करे तो भी जो अनर्थ अवश्य होने वाला होता है, होकर रहता है, बुद्धिबल के सिवाय दूसरा कोई इसको सहन नहीं कर सक्ता। कालक्रम से मारे हुये पुरुष का रक्षण कर्ता कोई नहीं है। हे इन्द्र! तू तो अपने को कर्ता मानता है, यह बड़ा भारी दुःख है! यदि तू कर्ता होता, तो तेरा कोई कर्ता न होता, जिस कर्ता का दूसरा कर्ता है, वह कर्ता समर्थ नहीं है। तूने मुझे काल करके जीताहै और काल ने ही मुझे हराया है। जितने चलने वाले हैं, इनमें काल ही सर्वोत्तम चलने वाला है। काल ही समस्त प्रजा को चलाता है।

हे इन्द्र! साधारण प्राकृत मनुष्य की सी बुद्धि होने से तू काल को नहीं जानता और कितने ही, प्राकृत बुद्धि वाले पुरुष अपने कर्म से तुझे श्रेष्ठ हुआ मानते हैं, वे लोग काल क्रम को नहीं जानते। जब

मैं जानता हूं कि सब लोकों की प्रवृत्ति काल से होती है, तो ऐसा जानकर मैं काल से पीड़ित होने का शोक क्यों करूं, क्यों मोह को प्राप्त होऊं और क्यों भ्रम में पड़ूं ? हे इन्द्र ! मैं, तू और दूसरे जो २ देवों के राजा होंगे, वे सब उसी मार्ग से जायंगे, जिस से हजारों इन्द्र जा चुके हैं।

हे देवराज इन्द्र ! इस समय तू दुर्धर्ष चटक मटक युक्त सर्वोत्तम लक्ष्मी से सब को देदीप्यमान दिखायी दे रहा है, एक समय ऐसा आवेगा कि मेरे समान तुझे भी काल अपने चक्कर में ले लेगा। काल बली हजारों इन्द्रों और देवताओं को प्रत्येक युग में नष्ट करता रहता है, काल का अतिक्रमण कोई नहीं कर सक्ता ! तू इन्द्र पद को पाकर ऐसा समझता है कि मैं ने ब्रह्म देव का सनातन पद पाया है परंन्तु यह तेरा पद अचल अथवा अनंत नहीं है, अन्य कोई भी पद अचल अथवा अनन्त नहीं है, तू समझता है कि मेरा इन्द्र पद अचल है, यह तेरी भूल है ! हे सुरेश्वर ! जो तेरा विश्वास नहीं करते, उनका तू विश्वास करता है और जो अनिश्चित है, उस को निश्चित मानता है, कोई सर्वदा नहीं रहता, सब काल के गाल में हैं ! राज्य लक्ष्मी अनेकों के पास रह कर तेरे पास आयी है, हे इन्द्र ! सच जान तेरे पास भी यह चला लक्ष्मी रहने वाली नहीं है, थोड़े दिन तेरे पास रह कर दूसरों के पास चली जायगी ! यह इतने राजाओं को छोड़ चुकी है कि उन की गणना भी मुझ से नहीं हो सक्ती। तुझे छोड़ कर दूसरे बहुत सों को यह छोड़ती ही रहेगी! जिन्होंने वृक्ष, औषधि, वन और रत्नों की खानियों सहित इस पृथ्वी को भोगा है, उन का मुझे स्मरण है, पृथु, ऐल, मय, भयंकर नरकासुर, शंखासुर, अश्वग्रीव, पुलोमा, स्वर्भानु, अमितध्वज, प्रह्लाद, नमुचि, दक्ष विप्रचित्त, विरोचन, हिरण्यकशिपु और कैटभ, इन के सिवाय अनेक दैत्य, दानव, राक्षस पूर्व में हो चुके हैं, इनके पूर्व भी अन्य बहुत से हो चुके हैं यह सब पृथ्वी को छोड़ कर चले गये हैं। काल सब को खा जाता है, काल सब से बलवत्तर है, तू ही अकेला सौ यज्ञ करने वाला नहीं है किंतु इन सब ने सौ२ यज्ञ किये थे। उपरोक्त सर्व दैत्य धर्म परायण, निरंतर यज्ञ करने वाले, आकाश में गमन करने वाले, संमुख युद्ध करने वाले, कवच धारण करने वाले, हाथ में परिघ आयुध रखने वाले, सैंकड़ों माया जानने वाले, इच्छानुसार रूप धारण करने वाले थे। इनका संग्राम में कभी पराजय हुआ हो, ऐसा सुनने में नहीं आया। ये लोग सत्य व्रत पालते थे और जहां चाहें वहाँ चले जाते थे वेद व्रत पालने वाले बहुश्रुत थे। मनवाञ्छित ऐश्वर्य को पाकर भी ऐश्वर्य के मद से रहित थे, पात्र देख कर योग्य दान करते थे और सब प्राणियों पर दया रखते थे। ये सब दक्ष की पुत्री के पुत्र प्रजापति के वंश में थे। सब प्रताप वाले और तेजस्वी थे, इन सब को काल भक्षण कर गया !

हे इन्द्र ! जब तू इस पृथिवी को भोग कर इस का त्याग करेगा, तब तू शोक को रोक न सकेगा, इस लिये तू काम भोग की इच्छा को और लक्ष्मी के गर्व को त्याग दे क्योंकि ऐसा करने से

जब तेरे राज्य का नाश होगा, तब तू शोक सहन करने को समर्थ होगा, शोक के समय शोक न करेगा किंतु सर्वदा समचित्त रहेगा। जो हो गया और आगे होगा, इस की चिंता छोड़ कर जो कुछ तुझे वर्तमान में प्राप्त है, इस से निर्वाह कर! आलस्य रहित काल ने मुझ से उद्योगी पुरुष को भी पकड़ लिया तो तुझे भी एक न एक दिन अवश्य पकड़ेगा! हे इन्द्र! मैं अपने कहे हुये वचनों की क्षमा मांगता हूं।

हे देवेन्द्र! तू मुझे त्रास देता है और बाणों से मेरे मन को छेदता है, मैं मनको वश करके बैठा हुआ हूं, तू अपने को श्रेष्ठ मानता है परंतु यह नहीं समझता कि प्रथम काल मेरे पास आया है और अब तेरे पीछे दौड़ रहा है। हे देवेन्द्र! इस समय काल ने मुझे मारा है, इस लिये तू गर्जना करता है, जब मैं क्रोध करके संग्राम में खड़ा होऊंगा, तब मेरे संमुख तीनों लोकों में कौन खड़ा हो सक्ता है? परंतु मुझ से काल बलवान है, इस काल के प्रभाव से तू मेरे सामने खड़ा है, काल ने मुझे स्वर्ग से भ्रष्ट किया है और तुझे स्वर्ग का इन्द्र बनाया है। काल की गति विचित्र है, नहीं तो तू कैसे इन्द्र होता और मैं अपने पद से कैसे भ्रष्ट होता। काल ही कर्ता और विकर्ता-विपरीतकर्ता है, इस लिये ज्ञानी पुरुष नाश विनाश, ऐश्वर्य, सुख दुःख जन्म मरण पाकर हर्ष अथवा शोक नहीं करते!

हे इन्द्र! तू मुझे जानता है और मैं तुझे जानता हूं, फिर तू मेरे सामने अपनी बड़ाई क्यों करता है? तू मेरे पराक्रम को जानता है कि संग्राम में मैंने कैसा पराक्रम दिखलाया था, इतना कहना ही बस है। हे शचीपते! पूर्वमें मैं मैंने आदित्य, रुद्र साध्यदेव, वसु और मरुत इन सब को जीता था। तू जानता ही है कि जब देव और असुरों का युद्ध हुआ था, तब मैं ने सब देवताओं को भगा दिया था। संग्राम में मैंने तेरे ऊपर वन, वनवासी, शिखर और पर्वत डाले थे, मैं क्या नहीं कर सका? सब कुछ कर सक्ता हूं परंतु काल का अतिक्रमण नहीं कर सक्ता! तू वज्रधारी है तो भी मैं तुझे एक मुक्के से मार सक्ता हूं परंतु इस समय मैं तेरे मारने का उत्साह नहीं कर सक्ता क्यों कि मेरे पराक्रम दिखलाने का यह काल नहीं है किंतु यह क्षमा करने का काल है इसी लिये तेरे न सहने योग्य वचनों को मैं सहन कर रहा हूं! आज काल रूप अग्नि ने मुझे घेर रक्खा है, काल के पाश में बंधा हुआ हूं, दुर्दशा में हूं, इस लिये तू मेरे सामने अपनी कीर्ति गा रहा है! हे इन्द्र! लाभालाभ, सुखदुःख, काम क्रोध, जन्ममरण, बंधन तथा मोक्ष ये सब काल से प्राप्त होते हैं! मैं कर्ता नहीं हूं, तू भी कर्ता नहीं है, समर्थ कर्ता काल ही है, जो वृक्ष के फल के समान मुझे, तुझे और सब को पकाता है,

हे इंद्र! काल को जानने वाला पुरुष कभी शोक नहीं करता, मैं काल को जानता हूं, इसलिये शोक नहीं करता, शोक करने से कुछ लाभ भी नहीं है क्योंकि शोक करने से दुःख न तो मिटता है और न कम ही होता है, इसलिये मैं यथा प्राप्त में प्रसन्न हूं, शोक नहीं करता, भय नहीं करता किंतु सर्वदा स्वस्थ रहता हूं।

दैत्यराज के ऐसे धैर्य युक्त भय रहित वचन सुन कर हजार नेत्र वाला वज्रधारी इन्द्र इस प्रकार कहने लगाः-

इन्द्रः-हे दैत्यराज! तेरी बुद्धि स्थिर है, तू तत्वदर्शी है, इस में संशय नहीं है, वज्र और वरुण

का पाश लिये हुये मैं तेरे सामने खड़ा हुआ हूं, फिर भी तू निर्भय बैठा हुआ है! वज्र को देख कर मृत्यु तक भयभीत हो जाता है, परन्तु तुझे भय नहीं है। इसलिये तू सत्य पराक्रम वाला है, तत्व-दर्शी होने से ही तू निर्भय है! सचमुच काल महा-बली है, कायर होकर भी बड़े २ शूरों को खाजाता है, एक होकर भी हजारों को जीत लेता है, काल से कोई जीत नहीं सक्ता! राजपाट द्रव्य ऐश्वर्य आदि सब को काल ने ग्रस रक्खा है, काल से ग्रसित राज्य आदि पर किसी मूढ को भले ही विश्वास हो, विद्वान् उनका विश्वास नहीं करते! मैं जानता हूं कि सर्व लोक नाशवान् हैं, बड़े छोटे सब प्राणियों को काल निगल जाता है! काल सर्वदा सावध है, देहधारी असावध है! काल का कोई परिहार नहीं कर सक्ता, न कोई काल का उल्लंघन कर सक्ता है! जैसे ब्याज बट्टा खाने वाला ब्याज को मूल में जोड़ता जाता है, इसीप्रकार काल भी रात्रि, दिवस, मास, क्षण, काष्ठा, लव और कला, इन सब को एकत्र करता रहता है! मैं आज यह करूंगा और शेष कल करूंगा' इस प्रकार कहने वाले पुरुष को काल इस प्रकार ले जाता है जिस प्रकार नदी का वेग वृक्ष को लेजाता है। आज मनुष्य बैठा हुवा है, कल ही काल उसको लेजाता है, लोग आश्चर्य करते रह जाते हैं! भोग, स्थान, ऐश्वर्य और द्रव्य सब नाशवान् हैं, सबको अनित्य और अनिश्चित जान कर तू नहीं घबराता, इसलिये तू धन्य है! मूढ पुरुष ईर्ष्या, अभिमान, लोभ, काम, क्रोध, भय, स्पृहा, मोह और अहंकार में आसक्त होकर भूल में पड़े हुये हैं, तू पदार्थ के तत्व को जानता है, ज्ञानी है, तपस्वी है, ईश्वर भक्त है, इसलिये हस्तामलक समान काल को स्पष्ट देखता है! हे विरोचनपुत्र! तू सर्वशास्त्र विशारद है, काल के तत्व को जानता है! सर्वत्र विहार करता है तो भी मुक्त है क्योंकि किसी में आसक्त नहीं होता! तू जितेन्द्रिय है, इसलिये रजोगुण तमोगुण तुझे स्पर्श नहीं करते! प्रीति और संताप दोनों से तू रहित है, पूर्ण त्यागी है, भगवान् का सच्चा भक्त है, वैर रहित है शांत मन वाला है! तुझ सरीखे बन्धन में पड़े हुये ज्ञानवान् पुरुष को मैं मारना नहीं चाहता क्योंकि सौजन्य परम धर्म है!

हे महासुर! तेरा कल्याण हो, जिस वरुण पाश से तू बंधा हुआ है, वह पास कलियुगी जीवों के उपकार से छूट जायगी। जब वह वृद्ध सास से काम करावेगी, जब पुत्र पिता से काम लेने लगेगा, जब शूद्र ब्राह्मणों से पैर धुलावेंगे, जब पुरुष विजा-तीय योनि में वीर्य पात करेंगे, जब शूद्र निर्भय होकर ब्राह्मणों से समागम करेंगे, जब ब्राह्मण कुशाओं से दान लेंगे, जब ऊंच नीच जाति मिल कर भोजन करने लगेंगी और वर्णों की मर्यादा टूट जायगी, तब तेरा एक २ पद क्रम से छूट जायगा,! तू मुझ से भय मत कर, स्वस्थ चित्त वाला और सुखी हो!

इतना कह कर गाजराजारूढ देवों का ईश्वर इन्द्र अपने स्थान स्वर्ग को चला गया। ब्राह्मण और महर्षि उस की स्तुति करने लगे। इस प्रकार सब असुरों को जीत कर इन्द्र तीनों लोकोंका राजा हुआ।

शिष्य-महाराज! यह कथा तो बहुत ही शिक्षाप्रद है, क्या २ शिक्षा देती है, इसका विचार एकान्त में जाकर करूंगा और हर्ष शोक तो कभी

नहीं करूंगा किन्तु सर्वदा समता धारण करूंगा, सच कहा है:-

कुं:-समता जो नर धारता, सोई पण्डित धीर।
ज्ञानी योगी है वही, वह ही जगमें वीर॥
वह ही जग में वीर, धैर्य मन में जो धरता।
करता हर्ष न शोक, नित्य सम चित्त विचरता॥
भोला! तज दे राग, सर्व की तज दे ममता।
मत ला मन में क्षोभ, धार उत्तम गुण समता॥

अथ कैवल्योपनिषद्

आश्वलायन भगवान् ब्रह्मा के पास जाकर बोले कि भगवन! वह श्रेष्ठ ब्रह्म-विद्या मुझे पढ़ाइए जो सदा महात्माओं से सेवित है और गुप्त है, जिस से विद्वान् बहुत शीघ्र सब पापों को छोड़ कर पर से भी पर पुरुष (ब्रह्म) को पा जाता है।

उनसे वे ब्रह्मा बोले कि श्रद्धा, भक्ति, ध्यान और योग से जानो (ऋषि जनोंने) न तो कर्म से, न प्रजा से और न धन से, किन्तु केवल एक त्याग से अमृतत्व (मोक्ष) को पाया है। स्वर्ग से पर और अत्यन्त निगूढ़ तथा प्रकाशमान है, जिस में यती जन प्रवेश करते हैं। जो यती वेदान्त के विज्ञान से पदार्थ का भली भान्ति निश्चय कर चुके हैं और संन्यास योग से जिन के अन्तःकरण शुद्ध हो चुके हैं।

एकान्त स्थान में सुख पूर्वक आसन लगा कर, पवित्र हो कर, ग्रीवा, शिर और शरीर को सम करके, अन्तिम आश्रम में स्थित होकर, सब इन्द्रियों को रोक कर और भक्ति से गुरु को प्रणाम करके माया रहित विशुद्ध हृदय कमल का ध्यान कर के उसके बीच में विशद, शोक रहित, अचिन्त्य, अव्यक्त, अनन्त रूप, शिव, प्रशान्त, अमृत, ब्रह्मयोनि, आदि मध्य और अन्त रहित, एक, विभु, चिदानन्द, अरूप, अद्भुत, उमासहित, प्रभु, प्रशान्त त्रिलोचन, नील-कण्ठ परमेश्वर का ध्यान कर के मुनि सब के साक्षी भूतयोनि को प्राप्त होता है, जो कि माया से परे है। वह ब्रह्मा है, वह शिव है, वह इन्द्र है, वह अक्षर है, वह परम स्वराट् है। वही विष्णु है, वह प्राण है, वह काल है, अग्नि है, वह चन्द्रमा है। जो कुछ भी भूत या भविष्यत् है, सब वही सनातन है। उसी को जान कर मृत्यु का अतिक्रमण करता है और कोई मार्ग मुक्ति के लिए नहीं है। आत्मा को सब भूतों में स्थित तथा सब भूतों को आत्मा में देखता हुआ परम ब्रह्म को प्राप्त होता है और किसी हेतु से नहीं। आत्मा को अरणि बना कर और प्रणव को उत्तर अरणि करके ज्ञान निर्मथन के अभ्यास से विद्वान् पाप को जला देता है। वही माया से मोहितात्मा होकर शरीर धारण कर के सब कुछ करता है। स्त्री तथा विचित्र अन्न पानादि भोगों से वही जागता हुआ तृप्ति को प्राप्त करता है। स्वप्न अवस्था में वह जीव अपनी माया से कल्पित जीव-लोक में सुख-दुःख का भोग करता है फिर सुषुप्ति दशा में सब कुछ लय हो जाने पर तम से अभिभूत होकर सुख रूप को प्राप्त होता है। फिर वही जीव जन्मान्तर के कर्मों के योग से सोता है। जागा हुआ जो जीव तीनों पुरों में क्रीड़ा करता है, उससे (यह) सब विचित्र (जगत्) पैदा हुआ है। वह आधार है, आनन्द है और अखण्ड बोध है, जिस में तीनों पुरों का लय हो

जाता है। इसी से प्राण, मन, और सब इन्द्रियां उत्पन्न होती हैं। इसी से आकाश, वायु, अग्नि, जल, और विश्व को धारण करने वाली पृथिवी उत्पन्न होती है। जो पर ब्रह्म है, जो महान् सर्वात्मा विश्व का आधार है, जो नित्य सूक्ष्म से भी सूक्ष्मतर है, सो तू ही है और तू ही यह है। जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति आदि, प्रपंच को जो प्रकाशित करता है, सो ब्रह्म मैं ही हूं, यह जान कर सब पापों से छूट जाता है। तीनों धामों में जो भोक्ता, भोग्य और भोग होता है, उनसे विलक्षण, साक्षी, और चिन्मात्र सदाशिव मैं हूं। मुझ में ही सब उत्पन्न हुआ है, मुझ में ही प्रतिष्ठित है और मुझ में ही लय होता है, सो ब्रह्म मैं हूं।

इति प्रथमः खण्डः

अणु से भी अणु मैं ही हूं, उसी प्रकार महान् से भी महान् मैं हूं। विचित्र विराट मैं ही हूं। मैं पुरातन हूं, ईश हूं, हिरण्यमय हूं, और शिव स्वरूप हूं। मैं हस्त और पादों से रहित हूं। मैं अचिन्त्य शक्ति हूं। मैं आंखों के बिना देखता और कानों के बिना सुनता हूं। विविक्त स्वरूप मैं (सब कुछ) जानता हूं। मेरा जानने वाला (कोई) नहीं है। मैं सदा चित्स्वरूप हूं। मैं ही अनेक वेदों से जानने योग्य हूं। वेदान्त का उद्भावक और वेदों का जानने वाला भी मैं ही हूं। न मेरे पुण्य है न पाप, मेरा नाश नहीं और न जन्म ही है। मेरे देह, इन्द्रिय और बुद्धि भी नहीं हैं। न मेरे पृथ्वी है, न जल है और न अग्नि, वायु तथा आकाश ही है। इस प्रकार हृदय स्थित, निष्कल और अद्वितीय परमात्मा का रूप जानकर सब के साक्षी, सत् और असत से रहित शुद्ध परमात्म-स्वरूप को प्राप्त होता है। जो शतरुद्रिय को पढ़ता है, वह अग्निपूत होता है, वह वायु पूत होता है और वह आत्मपूत होता है। वह मद्य-पान के पाप से छूटता है, वा ब्रह्महत्या के पाप से छूटता है, वह सुवर्ण की चोरी के पाप से छूटता है और वह सभी कृत्या-कृत्य से छूटता है, इसलिये अविमुक्त के आश्रित हो, इस प्रकार आश्रमी सदा अथवा एक बार जपे। इसलिये इसे जान कर कैवल्य पद प्राप्त करता है।

काम एकहु न सरिहैं

[ले० श्री गोविन्दराम जी "गोविन्द"]

होवे जो पतित पूर छोड़ निज चातुरी को,
बाही पल दीनबन्धु, पावन तो करि हैं।
पावन हू मान निजै, मनके मते ते पूर,
नारी सम तेरे अघ पुञ्ज सबै जरिहैं॥
पक्षी पशु भाई बन्यो, त्याग सबै दोष रोष,
क्यों न रघुनाथ तेरे माथ हाथ धरि हैं।
है के निष्कपट भाव, भजले 'गोविन्द' को रे,
मुख के कहेते काम एकहु न सरि हैं॥

सदुपदेश

[संग्रहकर्ता श्री रामसेवकसिंह 'श्याम']

जो पुरुष परमेश्वर की भक्ति में लीन हैं। उनके पास जाने में माया [मोह] सकुचती है। वेही पुरुष परमेश्वर को परम प्यारे होते हैं।

[काक भुशुण्डि]

जो मनुष्य भक्ति सरिस धर्म पर विश्वास नहीं करते वे पुरुष अन्य किसी उपाय से मेरी प्राप्ति के विषय में प्रयत्न करके भी मृत्युयुक्त संसार मार्ग में भ्रमण ही किया करते हैं।

[योगेश्वर श्रीकृष्णचन्द्र]

हरि चरणों के ध्यान में जो सुख पलमात्र में प्राप्त होता है वैसा अन्य सुख शत कल्प में भी नहीं प्राप्त हो सकता।

[महात्मा सूरदास [

परमेश्वर की भक्ति गंगा की धारा के समान है। जो मनुष्य उसमें प्रेम सहित मज्जन करते हैं उनके सारे ताप नाश हो जाते हैं।

[महात्मा गोस्वामी तुलसीदासजी]

जैसा सुख मनुष्य को भगवद्भजन व हरि चरणों में भक्ति पूर्वक लगन लगाने से प्राप्त होता है वैसा सुख कहीं अन्यत्र नहीं हो सकता।

[देवर्षि नारद मुनि]

जो लोग बुद्धिमान व ज्ञानी हैं वे आठों प्रहर हरि चरणों में ध्यान लगा कर संसारी व्यवहार से कुछ प्रयोजन नहीं रखते।

[ऋषिवर शुकदेव जी]

हरि चरणों की भक्ति, कल्पतरु के समान समझनी चाहिये इससे मनुष्य के सारे कार्य सफल हो जाते हैं!

[परमभक्त कुमार ध्रुव]

भक्तों पर परमात्मा की कृपा रहती है जो कोई उनके भक्त का अपमान करता है वह मानो उनका ही अपमान करता है।

[परम भक्त विदुर]

जिसको ईश्वर के सिवा और कोई अवलम्ब नहीं वह जानता ही नहीं, कि संसार में पराभव भी कोई चीज़ है।

[महात्मा गांधी]

जो मनुष्य काम, क्रोध, लोभ तथा छल इत्यादि से सर्वथा वर्जित है और सर्व वासना तज भगवद्भक्ति रस में प्लावित है और जिसे परमात्मा के सिवा अन्य किसी दूसरे का भरोसा नहीं है। उसके हृदय में भगवान् वास करते हैं।

[महर्षि वाल्मीकी]

हरि नाम एक अमूल्य रत्न है। इसका सच्चे मन से स्मरण करने वाले का, सांसारिक सारे ताप नष्ट हो जाते हैं।

[महाप्रभु चैतन्य]

प्रेम आत्मा का रूप है। उसका गुण आत्मिक है। यदि प्रेम में हमारा विश्वास होगा तो हम अपने सारे कार्य्य को सफलता पूर्व्वक प्राप्त कर सकते हैं।

[महात्मा गांधी]

मनो-निग्रह

[ले० श्री प्रभुदेव ब्रह्मचारी]

ज्योतिरूपं सदा पूर्णं निश्चलं वै निरामयम् ।
परमं पुरुषं दिव्यं योगगम्यं भजाम्यहम् ॥

यह बात निर्विवाद है कि सच्चे मुमुक्षुओं को (जो मनसा, वाचा कर्मणा उस ज्योतिरूप, निश्चल, अव्यय, अविनाशी परमात्मदेव के जानने की इच्छा रखते हैं) साधन की स्थिति के लिये ऐहिक पदार्थों को तथा उनके अन्दर रमणशील अपनी इन्द्रियों को प्रथम वश में करना होता है। बिना इन्द्रियनिरोध के कोई साधक सिद्ध हस्त नहीं हो सकता। जो साधक लौकिक तथा पारलौकिक पदार्थों से सब प्रकार का सम्बन्ध तोड़ कर एक अपने गम्य अभीष्ट स्थान की ओर अग्रसर होगा वही कृत्कार्य होगा। जिस का मन सांसारिक पदार्थों में यत्किंचित् भी फंसा रह गया उस का कृत्कार्य होना असम्भव है। अब हमें यह विचारना चाहिये कि हम को अभीष्ट स्थान तक पहुंचने में क्या२ प्रतिबन्ध हैं। बहुत विचारने पर यही निर्णय होता है कि–: 'जिन खोजा तिन पाइया' हम ऐसे उत्साही खोजी ही नहीं बने हैं। माला हाथ में है मन बरात में है। भजन कर रहे हैं मन संसार में चक्कर लगा रहा है। तो यही सिद्ध होता है कि मन ही सब से बड़ा जबरदस्त प्रतिबन्धक है। अगर यह किसी प्रकार मान जाय तो काम बन जाय। सब कुछ कर चुके, सन्ध्या, भजन, ध्यान समाधि सब में फिर चुके परन्तु सर्वत्र इसी पराक्रमी सम्राट् मन का साम्राज्य है। इस से सब पराभूत हैं। महाबाहु सर्वविजयी अर्जुन ने सब प्रकार का बल होते हुये भी अन्ततो इसी को दुर्जय समझ कर भगवान् से यही कहा है कि:–

योऽयं योगस्त्वया प्रोक्तः साम्येन मधुसूदन ।
एतस्याहं न पश्यामि चञ्चलत्वात्स्थितिं स्थिराम् ॥
चञ्चलं हि मनः कृष्ण प्रमाथी बलवद् दृढम् ।
तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम् ॥

हे मधुसूदन ! यह जो, आप ने समत्व बुद्धिप्रधान योग–यथा सब के सम्पूर्ण प्राणियों में आत्मा को और सर्व भूतों को आत्मामें सम बुद्धि से देखता हुआ वर्ते, और जो सुख व दुख को अपने समान सब को होते हुये जान कर यानी किसी भी पदार्थ में वस्तु भेद न रखता हुआ, मात्र एकब्रह्म ही की उपासना करता है, वही परम श्रेष्ठ योगी माना जाता है–वर्णन किया है, मैं इस योग को स्थिरता मन की चंचलता के कारण नहीं देखता हूं। हे कृष्ण !‡ निश्चय यह मन बड़ा चंचल, इन्द्रियों का मथने वाला, बली और दृढ है। मैं तो इस का निग्रह (रोकना) वायु के समान अत्यन्त कठिन मानता हूं।

---

‡ 'कृष्ण' शब्द से यह भाव निकलता है कि (कर्षति अधश्चिष्ठानिति कृष्णः) यथा–

कृषिर्भूवाचकः शब्दो णश्च निर्वृतिवाचकः ।
तयोरैक्यं परब्रह्म कृष्णमित्यभिधीयते ॥

उत्पत्ति और नाश के हेतु आप ही हो, मन की प्रवृत्ति भी आप ही करते हो निवृति भी आप ही करोगे।

अर्जुन को इस प्रकार दुर्जयी मन के जीतने के लिये अस्त व्यस्त देख उसके प्रश्न का समुचित उत्तर देते हुये भगवान् इस प्रकार गम्भीर वचन बोले:-

असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम्।
अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते ॥

हे महाबाहो !* इस में सन्देह नहीं कि मन (दुर्निग्रह) कठिनता से निग्रह में आने वाला है। इस के लिये बहुत से वीरों ने कहा है कि "जितं जगत्केन मनो हि येन" जिस ने मन को जीत लिया उस ने सम्पूर्ण विश्व को जीत लिया। परन्तु जैसे दुर्विजयी शत्रु को जीतने के लिये किले आदि की आवश्यकता पड़ती है इसी प्रकार दुर्जय मन के जीतने के लिये भी अभ्यास और वैराग्य के सुदृढ़ किले की परम आवश्यकता है। श्री भगवान् के उक्त कथन का अनुमोदन करते हुये ही महर्षि पतञ्जलि ने भी कहा है'-

'अभ्यास वैराग्याभ्यां तन्निरोधः।

अर्थात् अभ्यास वैराग्य के विकट दुर्ग से उस प्रमथनशील महादुर्जयी शत्रु मन का निरोध हो सकता है।

अब हम अभ्यास व वैराग्य के विषय में कुछ विचार करते हैं कि अभ्यास किस को कहते हैं और वैराग्य से क्या तात्पर्य है।

अगम्य वस्तु की प्राप्ति के लिये मनसा, वाचा, कर्मणा जो सतत प्रयास है वही अभ्यास कहलाता है। जो वस्तु इस लोक में या परलोक में अप्राप्य कही जाती है वह अभ्यास द्वारा ही प्राप्य हो सकती है। अभ्यास की सृष्टि में अभाव की स्थिति नहीं है। अगम्य पद का गम्य होना अप्राप्य का प्राप्य होना, अभाव का भाव होना, अवस्तु का वस्तु होना, अनात्म्य का आत्म्य होना अनाकार का आकार होना अभ्यास से सहज ही साध्य है। मनुष्यों के हृदयों में अनेकों वस्तुओं की अप्राप्ति का भाव देखने में आता है। जैसे बहुधा संसारी जीव भगवान् की प्राप्ति के लिये कुछ यत्न करके निराश होकर यह कहा करते हैं कि भगवान् वस्तुतः कोई वस्तु नहीं अन्यथा उस की प्राप्ति संभव होती, उन के इस प्रश्न (कथन) का मुंह तोड़ उत्तर अभ्यास ही है। मनुष्यों में मनुष्यत्व ही अभ्यास है। सकल चराचर विश्व अभ्यास के आधार पर स्थित है। सच पूछो तो यह वास्तव में संसार ही नहीं है। केवल एक ब्रह्म ही है। यह उपनिषद् के अनेकों प्रमाणों से सिद्ध है। यथा:-

एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म नेह नानास्ति किंचन। एषोह देवः प्रदिशोनु सर्वा पूर्वोह जातः सो गर्भे अन्तः स एव जातः सजनिष्यमाणः प्रत्यङ् जनास्तिष्ठति सर्वतोमुखः एको देवः वसभूतेषु गूढ़ सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा।

एक ब्रह्म ने ही इच्छा की कि मैं बहुत हो जाऊं। यथा:-

तदैक्षत बहुस्यां प्रजायेय-

अर्थात् उस ब्रह्म ने अपनी प्रयोजनी शक्तियों के अभ्यास के लिये नाना रूप होकर संसार की स्थिति की सत्ता की हुई है। पुराणों में प्रसिद्ध है कि एक बार शिव जी ने अपने डमरू को रख दिया

---

*'महाबाहो' सम्बोधन देने से भगवान् का यह तात्पर्य ध्वनित होता है कि हे कुन्तीपुत्र! तू तो बड़े २ विशाल भुजाओं वाला है, फिर तुझे मन का पकड़ना क्या बड़ी बात है।

और विचारा कि अब बारह वर्ष तक न बजायेंगे और संसार में घोर अनावृष्टि करेंगे। बस फिर क्या था सारे संसार में शोक छागया सब प्राणी भूखसे व्याकुल होगये। कोई भी खाद्य पदार्थ अवशिष्ट नरहा। वर्षा बिना भूमि में उपजाउ शक्ति न रही, सृष्टि, स्थिति का प्रचन्ड ह्रास हुआ, लय की वृद्धि हुई। संसार की श्मशान में परिणति होने लगी। बलवानों ने हीनशक्ति वालों को अपना ग्रास बनाया। ब्रह्मा विष्णु का साम्राज्य तहस नहस होने लगा। शिवकी विजयपताका अखिल भूमण्डल पर लहराने लगी। इसके पश्चात् एकबार शिवजी पार्वतीजी के साथ भ्रमण करते हुये एक स्थल पर पहुंचे जहां कि एक किसान अपने क्षेत्र में हल चला रहा था। शिव जी आश्चर्य से चकित हो कर पार्वती जी से बोलेः- प्रिये ! देखो यह कृषक वर्षा न होने पर भी सूखी भूमि में वृथा हल जोत कर परिश्रम कर रहा है। पार्वती जी बोलीं कि इसके पास चलें और पूछें कि यह अब घोर प्रलय में भी किस इच्छा से हल चला रहा है।

महादेव पार्वतीजी उस कृषकके निकट गये महादेव जी बोले भाई ! अब तो घोर अकाल पड़ रहा है। दैवज्ञों से सुना जाता है कि महादेव जी द्वादश वर्ष तक अपना डमरू न बजावेंगे, और घोर अकाल पड़ेगा, फिर तुम व्यर्थ में क्यों पच रहे हो, बिना वर्षा के कृषि तो होने की नहीं। शिव जी की यह बात सुन कर किसान ने उत्तर दियाः-भाई ! महादेव को तो महादेव जाने मैं तो अपना हल इस लिये चलाता हूं कि कहीं बारह वर्ष तक अनावृष्टि के कारण हल चलाना ही न भूल जाऊं, इसलिये अपने अभ्यास की स्थिति के लिये हल चला रहा हूं। शिव जी उस कृषक का उत्तर सुन कर सोचने लगे कि यह तो ठीक कहता है कहीं बारह वर्ष में मैं भी डमरू बजाना न भूल जाऊं। तुरन्त डमरू बजाया और सुवृष्टि हुई।

ऐसे ही एक मनुष्य के मन में पढ़ने की तीव्र इच्छा थी परन्तु आयु का अधिक भाग व्यतीत हो जाने के कारण वह निराश हो जाता था कि मैं अब क्या पढ़ सकता हूं। एक दिन वह मनुष्य एक कुएं पर पानी खैंचने को गया, उस ने देखा कि कुऐ की सिल पर बड़ा भारी आघात-क्षत है। उस ने मनुष्यों से पूछा कि यह सिल कैसे हुई है। मनुष्यों ने कहा भाई! इस पर प्रतिदिन रज्जुएं घर्षित होती हैं। इसलिये रस्सी के संघर्ष से इतना बड़ा गढ़ा इस सिल में पड़ गया है। उस मनुष्य ने सोचा जब यह पत्थर भी दैनिक संघर्ष से क्षत हो गया तो क्या प्रति दिन पठन का अभ्यास करने से मैं विद्वान् न हो जाऊंगा ? अवश्य हो जाऊंगा। यह विचार कर पठनार्थ दैनिक अभ्यास के लिये सन्नद्ध हो गया और कालान्तर में दिव्य पंडित बनगया। सच कहा हैः-

करत करत अभ्यास के जड़मति होत सुजान।
रसरी आवत जात के सिल पर होत निशान॥

अभ्यास की करामात अमोघ है। मानुषिक शक्तियां ही नहीं दैवी शक्तियाँ भी अभ्यास के ही आश्रयण से प्रतिफलित होती हैं। कहते हैं कालीदास को देवी द्वारा वर मिला था कि तू असाधारण विद्वान् होगा। कालीदास वर को पाकर अत्यन्त प्रसन्न हुवा और स्वयं शास्त्रों में प्रयास करना छोड़ दिया किदेवी के वर से अनायास ही विद्वान् बन जाउंगा। एक दिन देवी मनुष्याकृति धारण कर एक

मार्गासन्न बैठ कर बालु रेते की दिवार चिनने लगी, संयोग वश कालीदास भी उसी मार्ग से भ्रमण करते हुये आये और देवीसे बोले कि तुम क्या बना रही हो? देवी ने कहा दीवार चिनती हूं। कालीदास ने कहा भला, बिना जल के कैसे दीवार बनेगी। देवी ने कहा तो भला, आप बिना पढे यानि बिना शास्त्राभ्यास के कैसे विद्वान् बनोगे। कालीदास समझ गये और तब से अभ्यास करना प्रारम्भ कर दिया। कहने का तात्पर्य यह है कि बिना अभ्यास के किसी कार्य की सिद्धि की संभावना नहीं हो सकती चाहे वह प्राकृतिक हो चाहे अप्राकृतिक। अस्तु-हमारा प्रकृत विषय "अभ्यास" यानी भगवान् की ओर अग्रसर होने के लिये यत्न करना है, यौगिक प्रणालो से मन की पाँच वृत्तियां कहलाती हैं। यथाः-

'प्रमाण विपर्यय विकल्प निद्रा स्मृतयः'।

प्रमाण-सत्य ज्ञान उत्पन्न करने वाली वृत्ति, विपर्यय-मिथ्या ज्ञान उत्पन्न करने वाली वृत्ति, विकल्प-कल्पित ज्ञान उत्पन्न करने वाली वृत्ति, निद्रा-ज्ञान रहित वृत्ति, और स्मृति-सुने हुये पदार्थों का स्मरण करने वाली वृत्ति, मनुष्य जीवन का मुख्योद्देश्य ज्ञान करना है, और वह ज्ञान उक्त वृत्तियों के निरोध के बिना होना असंभव है। ये वृत्तियां क्लिष्ट कहलाती हैं और जो आत्मविचारवाली, ईश्वरध्यान में निरत, सत्त्व रज तम तीनों गुणों से अतीत हो वे अक्लिष्ट वृत्तियां कहाती हैं! पूर्वोक्त वृत्तियोंको क्लिष्ट इस लिये कहा जाता है कि उन वृत्तियों से इष्ट प्राप्ति कष्ट (क्लिष्टता से) साध्य है। और अक्लिष्ट वृत्तियों से अभीष्ट की प्राप्ति सहज साध्य है। इन क्लिष्ट वृत्तियों को अक्लिष्ट वृत्तियों द्वारा परिहार करने के लिये जो सतत प्रयत्न किया जाता है वही अभ्यास कहाता है। अब उक्त पांचों वृत्तियों का विवेचन करते हैं-

'तत्र प्रत्यक्षानुमानागमाः प्रमाणानि ।'

प्रमाण वृत्ति प्रत्यक्ष अनुमान आगम भेद से तीन प्रकार की हैं अर्थात् प्रत्येक स्थूल व सूक्ष्म पदार्थ का निश्चयात्मक ज्ञान निम्न रीतियों से होता है। चित्त का स्थूल वा सूक्ष्म इन्द्रियों द्वारा ज्ञेय पदार्थ के साथ सम्बन्धित हो जाने पर पदार्थ का ज्ञान होता है। ऐसे समय में चित्त की वृत्तियों को प्रत्यक्ष प्रमाण कहते हैं, और जब ज्ञेय पदार्थ इन्द्रियों द्वारा ग्रहण न किया जा सके तब उस के गुण या लक्षण को ग्रहण करके सोचने से पदार्थ का ज्ञान होता है जैसे धूम को देखने से अग्नि का अनुमान होता है, क्यों कि अग्नि के बिना धूम का होना असंभव है। उस समय चित्त की वृत्ति अनुमान प्रमाण वाली कहलाती है और जब ज्ञेय पदार्थ और उसके लक्षण व गुण इन्द्रियों द्वारा ग्रहण न किये जा सकें तब उस का वर्णन सत्य वेत्ता ऋषि प्रणीत आर्ष ग्रन्थों के पढने से होता है। ऐसे समय में चित्त की वृत्ति को आगण प्रमाण कहते हैं। इन तीनों प्रमाणों को जिन से बाह्य पदार्थों का ज्ञान होता है, महर्षि पतञ्जलि ने क्लिष्ट प्रमाण कहा है। परन्तु आभ्यन्तरिक विषयों का ज्ञान बढने से जिस से ईश्वर में प्रेम और भक्ति बढ़ती है ये ही तीनों अक्लिष्ट प्रमाण हो जाते हैं।

'विपर्यय मिथ्या ज्ञान मतद्रूप प्रतिष्ठम्'।

विपर्यय उस वृत्ति को कहते हैं जिस से मिथ्या ज्ञान उदय हो और ज्ञेय वस्तु का यथार्थ ज्ञान न हो सके। इसी वृत्ति के द्वारा प्रायः मनुष्य का, मरीचिका में जल, सीपी में चांदी, रज्जु

में सर्प, आकाश में नीलता की भांति सम्पूर्ण ज्ञान भ्रान्तिरूप हो जाता है।

'शब्द ज्ञानानुपाती वस्तुशून्यो विकल्पः'

विकल्पवृत्ति उस को कहते हैं जिस में शब्द मात्र के सुन से ही ज्ञान भासता है। वास्तव में ज्ञेय वस्तु कुछ भी नहीं जैसे-शश के शृंग, आकाश में पुष्प, बन्ध्या के पुत्र शब्द सुन कर विकल्पात्मक ज्ञान होता है कि शश के शृंग, बन्ध्या के पुत्रादि होते होंगे परन्तु वास्तव में नहीं होते।

'अभाव प्रत्ययालम्बना वृत्तिर्निद्रा'

निद्रा चित्त की उस वृत्ति को कहते हैं जिस में मनुष्य को अभाव प्रत्यक्ष हो। प्रत्यय शब्द से वाह्य वस्तुओं का प्रतिबिम्ब जो चित्त ग्रहण करता है तात्पर्य है अर्थात् प्रतिबिम्बों के अभाव को प्रत्यय कहते हैं। ऐसी अवस्था में मनुष्य को यह प्रतीत होता है कि मुझ को किसी का ज्ञान नहीं परन्तु ऐसी अवस्था में भी अपने स्वत्व को नहीं भूलता, जैसे घोर निद्रा से जाग कर मनुष्य यह कहता है कि मैं बड़े आनन्द से सोया। आनन्द से सोने का स्मरण ज्ञान के बिना नहीं हो सकता।

अपूर्ण

कैसे ?

[ले॰ श्री मदनगोपाल जी 'सिंहल']

बिन तेरे प्राणनाथ कहो कैसे खेलूं होली,
मुझे तो वियोग तेरा अति ही सतात है;
तेरे बिन होलीका ये लाल रंग और लाल,
लाल ये गुलाल प्यारे श्याम ना सुहात है।

श्याम बिन तेरे मेरा रङ्ग बदरङ्ग हुवा
या ही हेतु मोहे राग रङ्ग नहीं भात है;
जब जब होली खेलना मैं चाहता हूं प्यारे
तब तब मोहे श्याम तेरी सुध आत है॥

सार्व-भौम योग

गतांक से आगे।

(ले॰ श्री पं॰ शिव प्रसाद जी शास्त्री)

आसन

योग का तृतीय अङ्ग आसन है। जिसके द्वारा शरीर और मन आरोग्यता को प्राप्त होकर, स्थिर सुख, शक्ति और सन्तोष को प्राप्त हो ऐसी शरीर की स्थिति विशेष को आसन कहते हैं। महर्षि पतञ्जलीजी ने आसनों का लक्षण इस प्रकार किया है "स्थिरसुखमासनम्" अर्थात् शरीर और मन को जो स्थिर सुख का देने वाला हो उसे आसन कहते हैं। सूत्र का अभिप्राय यह है कि जिस प्रकार शरीर को रखने से शरीर सुख को प्राप्त हो और मन स्थिर होकर आत्मसुख का अनुभव करे शरीर को उसी प्रकार रखने की रीति को आसन कहते हैं। मनुष्य को स्थिर सुख उसी अवस्था में प्राप्त हो सकता है जब उसका शरीर और मन आरोग्य हो, इसलिए स्थिर सुख इस शब्द से यह अभिप्राय प्रकट होता है कि आसन के द्वारा मनुष्य पूर्ण आरोग्यता प्राप्त

कर सकता है। पूर्ण आरोग्यता वही कहाती है कि जब शरीर और मन दोनों आरोग्य रहें केवल शरीर या मन के आरोग्य रहने से पूर्ण आरोग्यता नहीं कहायी जा सकती।

एक अवस्था में मनुष्य कभी स्थिर सुख को नहीं प्राप्त हो सकता, इसलिए कभी बैठता है- कभी खड़ा होता है, कभी टहलता है और कभी लेट जाता है। इस प्रकार शरीर के चञ्चल होने से मन भी चञ्चल होताहै। यदि किसी प्रकार शरीर स्थिर कर लिया जाय तो मन भी स्थिर हो जाता है। महर्षियों योगाचार्य्यों ने बैठने के ऐसे अनेक उपाय निकाले हैं जिन के अभ्यास से शरीर शनैः शनैः स्थिर सुख को प्राप्त होने लगता है। जीवों की जितनी योनियां हैं उतने ही आसन हैं। सर्व प्रथम, संसार के कल्याण के लिये उन समस्त आसनों का उपदेश, योगीश्वर भगवान् शंकर ने अपने भक्तों को किया। चौरासी लाख आसनों में चौरासी आसन मुख्य माने गये हैं। उन चौरासी आसनों में भी मनुष्यों के कल्याण के लिये आचार्य्यों ने तैतीस आसनों का उपदेश किया है और वह यह हैं—यथा- सिद्धासन, स्वस्तिकासन, पद्मासन, बद्धपद्मासन, भद्रासन, मुक्तासन, वज्रासन, सिंहासन, गोमुखासन, वीरासन, धनुरासन, मृतासन, गुप्तासन, मत्स्यासन, मत्स्येन्द्रासन, गोरक्षासन पश्चिमोत्तानासन, उत्कटासन, संकटासन, मयूरासन, कुक्कुटासन, कूर्मासन, उत्तानकूर्मासन, मण्डूकासन, उत्तानमण्डूकासन, वृक्षासन, गरुड़ासन, वृषासन, शलभासन, मकरासन, उष्ट्रासन, भुजङ्गासन और योगासन। वृक्षासन को ही शीर्षासन, और कपाली आसन कहते हैं और इसी के भेद को विपरीत करणी मुद्रा कहते हैं। प्राणायाम, प्रत्याहार धारणा, ध्यान और समाधि के लिये केवल सिद्धासन, और पद्मासन दो ही आसन उत्तम माने गये हैं। शेष आसन शरीर को स्वस्थ रखनेके लिये हैं। योगके अभ्यासी को आसनों का अभ्यास प्रतिदिन अवश्य करना चाहिये क्योंकि साधक जबतक एक आसन से अविच्छिन्न तीन घंटे सुख पूर्वक बैठ नहीं सकता तब तक उसका प्राण और मन पर विजय पाना कठिन ही नहीं किन्तु असम्भव है। योगाभ्यासी को तो आसनों का अभ्यास करना अनिवार्य है ही। किन्तु शरीर का स्वास्थ्य, सामर्थ्य और दीर्घायु की प्राप्ति के लिये आसनों का अभ्यास मनुष्य मात्रको परम आवश्यक है। आसनों केद्वारा असाध्य से असाध्य कुलपरम्परागत मन्दाग्नि, क्षय, कुष्ट, अर्श भगंदर, प्रमेह अर्धाङ्ग, इत्यादि रोग समूल नष्ट किये जासकते हैं। संसार में कोई रोग ऐसा नहीं है जो आसनों के अभ्यास से दूर न हो सके। आसनोंका अभ्यास करने वाला मनुष्य सर्वदा स्वस्थ रहता है। योगी, भोगी, रोगी स्त्री पुरुष बालक, वृद्ध और युवा, सब प्रकार के मनुष्यों को आसन करने का अधिकार है। केवल व्यायाम की दृष्टि से ही देखा जाय तो भी आसनों के व्यायाम से ही उत्तम व्यायाम संसार में कोई दृष्टि गोचर नहीं होता। आसनों का व्यायाम सर्वोत्तम व्यायाम है, इस व्यायाम का करने वाला मनुष्य कभी रोगी हो ही नहीं सकता, उसका शरीर सुन्दर सुदृढ और सुडौल होकर स्थिर यौवन को प्राप्त होता है, उसकी बुद्धि और स्मरण शक्ति साधारण मनुष्यों की अपेक्षा कहीं अधिक होती है, उसका शरीर स्फूर्ति और कान्ति का केन्द्र बन जाता है, आलस्य का तो नाम

ही नहीं रहता, क्षुधा अत्यन्त प्रदीप्त होती है तथा भोजन में अपूर्व स्वाद आने लगता है। हम भारतीय पाश्चात्य सैण्डो आदि के व्यायामों के लिये सदा लालायित रहते हैं, उन दूषित व्यायामों में अमूल्य समय अमित द्रव्य, और अत्यन्त परिश्रम लगाने पर भी पूर्ण सन्तोषजनक फल नहीं पाते, हमारे ऋषि मुनियों ने हमारी स्वास्थ्यरक्षा के लिये आसनों का व्यायाम रूपी अमूल्य रत्न राशि हमको सर्वदा के लिये प्रदान करदी है किन्तु हम अपने अभाग्यवश उससे लाभ नहीं उठाते इससे अधिक बुद्धि मन्दता हमारी और क्या होगी!

मानव शक्ति तथा स्वास्थ्य का रहस्य अंतड़ियों की क्रियाओं के ऊपर ही निर्भर है, अन्तड़ियों की क्रियायें ही शरीर के अङ्ग प्रत्यङ्ग को शक्ति प्रदान करती हैं। जब किसी नाड़ी की क्रिया बन्द हो जाती है तो उस नाड़ी से सम्बन्ध रखने वाले शरीर के अवयव को खाद्य नहीं मिलता, इसलिये अशक्त होकर अपना कार्य बन्द करदेता है और मृतवत् हो जाता है। इस प्रकार उसके शिथिल होने से उसमें दर्द, शोथ या और किसी रूप में कोई न कोई विकार उत्पन्न हो जाता है, उसी विकार को रोग कहते हैं। नाड़ियों को निर्मल रखने से उनमें सदा क्रियायें होती रहती हैं। विविध प्रकार के आसन करनेसे नाड़ियां निर्मल रहती हैं और उनमें रक्त का प्रवाह बड़ी तीव्रता से निरन्तर होता रहता है और अङ्ग प्रत्यङ्ग में रक्त जाकर उसको आरोग्य और कार्यक्षम बनाता रहता है। मस्तिष्क, हृदय और फेफड़ा, उदर और उदर की अंतड़ियां तथा ब्रह्मदंड (रीढ़) शरीर इन मुख्य अंगों को आरोग्य और बलवान बनाने से समस्त शरीर आरोग्य और बलवान होता है। नाना प्रकार के आसनों से इन चारों अंगों में अपूर्व शक्ति उत्पन्न होती है और ये आरोग्य होकर समस्त शरीर को आरोग्यता और शक्ति प्रदान करते हैं। किस आसन से किस अङ्ग में आरोग्यता का विकास होता है? इसके उत्तर में यही कहा जाता है कि जिस आसन से जिस अङ्ग में अधिक जोर पड़े और नशों में अधिक तनाव पड़े उसी आसन से उसी अङ्ग में विशेष आरोग्यता और सामर्थ्य उत्पन्न होती है। योग के ४-५ आसन तो ऐसे अमूल्य हैं जो कि शरीर के समस्त अवयवों को आरोग्य और पुष्ट बनाते हैं। योगशास्त्र में लिखा है "आसनेन रुजो हन्ति"। अर्थात् आसनों के अभ्यास से समस्त व्याधियों का विनाश होजाता है। यदि मैं यह लिखने बैठूँ कि किस आसन से कौन व्याधि नष्ट होती है तो लेख अत्यन्त विस्तृत हो जायगा। अतः मैं उपरोक्त चार अङ्गों को आरोग्य बनाने वाले आसनों का उल्लेख करता हूं उनकी आरोग्यता से शरीर की समस्त व्याधियां नष्ट हो जाती हैं।

मस्तिष्क, फेफड़े और वीर्य के रोग दूर करने के लिये शीर्षासन, विपरीतकरणी मुद्रा, चन्द्रपीठ, कर्णपीड़ और सर्वांसन का अभ्यास रामबाण औषधि के तुल्य है। उपरोक्त आसनों के द्वारा मस्तक की कमजोरी, चक्कर आना, शिर शूल, कर्णरोग, चक्षुरोग, दन्तरोग, मृगी का रोग, विस्मृति का रोग, राजयक्ष्मा, हृदय का रोग इत्यादि रोग दूर हो कर रक्त शुद्ध होता है और वीर्य निर्दोष और गाढ़ा होकर उर्ध्वगति को प्राप्त होता है।

उदर और उदर की अंतड़ियों के रोगों को समूल नष्ट करने के लिये पश्चिमोत्तान, महामुद्रा,

मत्स्येन्द्र, मयूर और शीर्षासन करना चाहिये। इन आसनों से अजीर्ण मन्दाग्नि, बद्धकोष्ठ, अर्श, यकृत और प्लीहा के रोग दूर होकर उदर निर्मल कृश और सुन्दर हो जाता है।

मेरुदण्ड को विशुद्ध और बलवान बनाने के लिये विपरीतकरणी, शीर्षासन और पश्चिमोत्तान आसन का अभ्यास करना चाहिये इन आसनों से सीधे बैठने की शक्ति मेरु दण्ड में उत्पन्न होती है तथा बुद्धि और स्मरणशक्ति की वृद्धि होती है और स्वप्न दोष दूर होकर शरीर में ही वीर्य की खपत होने लगती है इन आसनों से रक्त भी विशुद्ध होता है।

भुजाओं, कूर्परों (कलाइयों) और अंगुलियों में बल बढ़ाने के लिये कुक्कुटासन, लोलासन, बकासन, मयूरासन, वृश्चिक आसन, और वृक्षासन का अभ्यास अत्यन्त उपयोगी है इन आसनों से हाथों में, चलती हुई मोटर को रोकने की शक्ति उत्पन्न हो सकती है।

चिड़चिड़े स्वभाव को दूर करके शरीर, मन और आत्मा में अपूर्व सुख शक्ति और सन्तोष को उत्पन्न करने वाला मृतासन (शवासन) है। दिन-भर अनेक कार्य करके शरीर कितना ही परिश्रान्त क्यों न हो गया हो १५-२० मिनिट शवासन करने से शरीर में पुनः नवीन जीवन का सञ्चार होता है शरीर श्रान्ति रहित होकर स्फूर्ति, शक्ति और उत्साह से परिपूर्ण हो जाता है

मैं प्रातः सायं दो समय आसनों का अभ्यास प्रतिदिन करता हूं। प्रातः काल शौचादि से निवृत्त होकर एकान्त शून्य कुटी में एक गुदगुदी गद्दी बिछाकर स्थिरचित्त से उसके ऊपर आसन करना प्रारम्भ करता हूं। प्रथमतः नमस्कार आसन से, सर्वशक्तिमान व्यापक सर्वाधार, सर्वज्ञ, अजर अमर, परमपिता परमेश्वर को नमस्कार करता हूं जिस परमेश्वर ने दया करके हमको यह सर्वोत्तम मनुष्य शरीर दिया और विशुद्ध बुद्धि दी जिसके द्वारा हम अभ्युदय और निःश्रेयस दोनों की प्राप्ति, उन्नति की अन्तिम सीमा तक पहुंच सकते हैं। इस आसन के पश्चात् कुक्कुटासन, बकासन, लोलासन मयूरासन, स्थित पश्चिमोत्तान, पश्चिमोत्तान, चन्द्रपीठ (हलासन) कर्णपीड़ और विपरीत करणी मत्स्येन्द्रपीठ, वृश्चिक, पादाङ्गुष्ठ, और वृक्षासन करता हूं। तत्पश्चात्—आधा घंटा कपाली आसन जिसे शीर्षासन कहते हैं करता हूं शीर्षासन और वृक्षासन में थोड़ा ही भेद है शीर्षासन में शिर पृथिवी पर रहता है और वृक्षासन में हाथों के भार पर ही समस्त शरीर रखना होता है। इन आसनों के अभ्यास से मुझे अनेक छोटे बड़े लाभ होते रहते हैं किन्तु तत्काल अपूर्वफल यह प्राप्त होता है कि मेरे शरीर में विद्युत् की भाँति स्फूर्ति आ जाती है और पुष्प के समान शरीर लघु हो जाता है चित्त में स्थिरता और प्रसन्नता उत्पन्न होती है तथा आत्मा में सुख और शान्ति का आविर्भाव होता है। आसनों की कृपा से मेरे शरीर में किसी रोग का आक्रमण नहीं होता, ऋतुओं के परिवर्तन का प्रभाव मेरे शरीर पर नहीं पड़ता देशान्तर के जल वायु मुझे हानि नहीं पहुंचा पाते। मैं सर्वदा स्वस्थ रहता हूं मेरे शरीर में कोई रोग नहीं है।

आसनों के अभ्यास के पहले मैं सर्वदा मन्दाग्नि से पीड़ित रहता था। नियमित भोजन से एक ग्रास भी अधिक खा लेने से अजीर्ण हो जाता

था और दस्त होने लगते थे यह मन्दाग्नि मुझे मातृक थी वर्षा में बड़ा ही भयंकर रूप धारण करती थी दिनभर कुछ न खाकर भी उदर में अफारा सा बना रहता था स्वाभाविक भूख तो कभी लगती ही न थी। आसनों के अभ्यास से यह मन्दाग्नि समूल नष्ट हो गई। गत वर्ष मैंने ५-६ मास अभ्यास बन्द कर दिया था तब भी इसका कोई चिन्ह नहीं दिखाई दिया। आसनों के अभ्यास से प्राणायाम में बड़ी सहायता मिलती है। मैं इतने अधिक प्राणायाम करता हूं कि सर्व साधारण तो कर ही नहीं सकता यदि कोई अभ्यासी आठ दिन भी करे और आसन न करता हो तो उसका फेफड़ा प्रक्षत हो जाय तथा मुख से रक्त निकलने लगे। मैं भी यदि आसन न करता होता तो मुझे प्राणायाम में सफलता कदापि न मिलती और मैं भी अन्य मनुष्यों की भांति प्राणायाम आदि योग का निन्दक बन जाता। प्राणायाम से फेफड़ों में जो आघात होता है, उनमें जो परिश्रान्ति होती है वह आसनों के द्वारा प्रतिदिन निकलती रहती है और फेफड़े स्वस्थ और कार्यक्षम बनते रहते हैं।

आसनों के विषय में विशेष ध्यान देने योग्य बातें यह हैं कि आसनों का अभ्यास शनैः शनैः करना चाहिये प्रथम आधा मिनिट या एक मिनिट ही प्रत्येक आसन करना चाहिये पुनः क्रम से बढ़ाते जाना चाहिये। हठ और शीघ्रता करने से हानि होती है। भोजन के तीन घंटे पश्चात् आसन करना चाहिये शीर्षासन करते समय सिर के नीचे तकिया या और ऐसी गुदगुदी गद्दी रखनी चाहिये जिससे सिर में तनिक भी आघात न हो यदि मस्तक में थोड़ा भी आघात होगा तो लाभ की जगह हानि ही होगी। प्रत्येक आसन जब न्यून से न्यून दश मिनिट किया जायगा तब उस के लाभ का अनुभव होगा। आसनों को स्त्रियां गर्भ की अवस्था में तथा प्रसव के दो मास पश्चात् तक न करें। ऋतुमती स्त्रियां भी ऋतु के दिनों में न करें। आसनों के अभ्यास के दिनों में स्निग्ध पदार्थ अवश्य खाना चाहिये तथा भोजन लघु करना चाहिये।

आसनों के अभ्यास से एक और अनुपम लाभ होता है जिसको लिखना मैं भूल ही गया था वह "मनोजविजय" आसनों के अभ्यासी को काम कभी विवश नहीं कर सकता. काम विकार शरीर को कितना ही विह्वल कर रहा हो, चित्त को संतप्त कर रहा हो आसनों के करते ही सूर्योदय से जैसे तिमिर राशि नष्ट हो जाती है उसी प्रकार काम का विकार नष्ट हो जायगा। आसनों का व्यायाम कामोद्रेग को नष्ट करने के लिये रुद्र भगवान् का तृतीय नेत्र है। यदि आसनों का द्वितीय नाम "मनोजविजय व्यायाम" रख दिया जाय तो अत्युक्ति न होगी। जिसने काम को वश में कर लिया उसने संसार को वश कर लिया। इसके ऊपर विजय पाना अत्यन्त ही कठिन है। योगिराज भर्तृहरि जी कहते हैं:-

मत्तेभकुम्भदलनेभुविसन्ति धीराः ।
केचित्प्रचण्डमृगराजवधेऽपिदक्षाः ॥
किन्तु ब्रवीमि बलिनां पुरतः प्रसह्य ।
कन्दर्पदर्पदलने विरला मनुष्याः ॥ १ ॥

उपरोक्त श्लोक का अर्थ यह है कि संसार में उन्मत्त हाथी के मस्तक को विदारण करने वाले धीर पुरुष मिल जाते हैं तथा प्रचण्ड मृगराज (सिंह) को भी वध करने वाले बहुत से वीर संसार

में मिलते हैं किन्तु ज्ञानवान शूरवीर और बलवानों के सन्मुख मैं प्रतिज्ञा पूर्वक कहता हूं कि काम के घमंड को चूर्ण करने वाले विरले ही मनुष्य संसार में अन्वेषण करने पर मिलेंगे। वास्तव में मदन विजयी होना अत्यन्तही दुर्लभ है। जिसने इसको वश में कर लिया उसने एक बड़ी भारी जटिल समस्या को हल कर लिया वह मनुष्यों की कोटि से निकल कर ऋषियों की कोटि में पहुंच गया और वनदेवताओं का भी पूज्य हो गया। मेरी तो ब्रह्मचारियों, ब्रह्मचारिणियों, विधवाओं और विधुरों से प्रार्थना है कि यदि आप ब्रह्मचर्य से रहना चाहते हैं और प्रबलशत्रु लोकविजयी काम के ऊपर विजय पाना चाहते हैं तो आज से ही आसनों का अभ्यास करना प्रारम्भ करदो। देखो थोड़े ही दिनों में आप को आशातीत सफलता प्राप्त होगी आसनों के साथ यदि प्राणायाम भी किया जाय तो सोने में सुगन्ध की भांति फल होगा।

यह एक निर्विवाद सिद्धान्त है कि योग अभ्यास के विना दीर्घकालपर्य्यन्त अस्खलित ब्रह्मचर्य्य कदापि नहीं रह सकता इसलिये ब्रह्मचारी को अपने ब्रह्मचर्य की रक्षा के लिये योग अभ्यास अवश्य ही करना चाहिये।

हठ योग के आचार्य्यों ने आसनों के अतिरिक्त २५ मुद्राओं का भी उपदेश किया है आसनों के भेद को ही मुद्रा कहते हैं किन्तु मुद्राओं का स्थान आसनों से ऊंचा है। बहुत सी मुद्राएं आसनों के ही काम में आती हैं और शेष प्राणायाम धारणा ध्यान और समाधि के काम आती हैं। मैं यहां मुख्य मुख्य आसनों के करने की विधि देता हूं समस्त आसनों की विधि लिखने से लेख पुस्तक का आकार धारण करेगा।

(अपूर्ण)

भक्ति-भावना

[ले० श्री "रसिकेन्द्र" कवीन्द्र कुटीर]

दरस दिखा जा रे कन्हैया ! दरस दिखा जा रे।

भटक रहा हूं मारा-मारा, चारों ओर अगम है धारा।
दीख न पड़ता कहीं किनारा, पार लगा जा रे॥

पतित, ओ शरण आताता है, पावन कर तू अपनाता है।
फिर क्यों मुझ से घबराता है ? धीर बन्धा जा रे॥

छकने को तेरी छवि प्यारी, बड़ी लालसा मन में भारी।
निठुर न हो, ओ चित्त-बिहारी ! हृदय छका जा रे॥

कौन यत्न से तुझ को पाऊं ? किससे सन्देशा पहुंचाऊं ?
क्या कहकर 'रसिकेन्द्र' बुलाऊं ? आ जा, आ जा रे॥

सुख व शान्ति

भौतिक (विज्ञान से या भक्ति से)

दस वर्ष का समय हुआ हेमचन्द्र नाम के एक बंगाली महाशय संयुक्तप्रांत के एक स्कूलमें पदार्थ विद्या (Seince) के मास्टर थे और हरीसिंह नाम का एक बालक उनकी श्रेणी में बड़ा होनहार व उत्साही विद्यार्थी था। मास्टर साहब की उस पर विशेष कृपा थी और हरीसिंह भी जिज्ञासु

विद्या का पिपासु और परोपकार भावना रखने वाला नवयुवक था वह नित्य मास्टर सहाब के मकान पर शिक्षा लेने के लिये जाया करता था और बड़ी श्रद्धा भक्ति से उनके उपदेश को ग्रहण करके शक्ति भर उस पर अमल करता था। मास्टर साहब देश-भक्त थे उन्होंने अपना विवाह नहीं किया था। उन्होंने विद्यार्थी अवस्था में ही यह अनुभव कर लिया था कि ब्रह्मचर्य की हानि करके और गृहस्थ का भार सिर पर रखकर परोपकार का काम करना असम्भव सा ही है। परंतु उनका यह निश्चय था कि पदार्थ विद्या के प्रचार से ही संसार में सुख व शांति स्थापन हो सकती है, इसलिये वह प्रत्येक विद्यार्थी को उपदेश दिया करते कि संसार में जितनी ही साईंस की उन्नति होगी उतनी ही सुख और शांति बढ़ेगी। जो विद्यार्थी साईन्स न लेकर संस्कृत आदि अन्य विषय परीक्षा में लेता था उसपर उनको बड़ी दया आती और उसे बार२ यही समझाया करते कि इस मरी हुई भाषा में क्या रक्खा है यदि संसार का और अपना उपकार करना चाहते हो तो साईन्स लेना चाहिए। हरीसिंह तो उनका शिष्य ही था वह भी स्कूल में इस बात का खूब प्रचार करता था। उनके इस प्रचार के कारण संस्कृत और फारसी की श्रेणियां सुकड़ २ कर थोड़ी सी रहगई थी, पंडित जी और मौलवी साहब चार २ पांच २ विद्यार्थियों के लिए बैठे रहते थे। मास्टर जी के उपदेश से हरीसिंह ने निश्चय कर लिया था कि आयुभर साईंस का ज्ञान प्राप्त करके देश के बालकों को साईंस के ज्ञान से विभूषित करूंगा। हरीसिंह ने मैट्रिक की परीक्षा में प्रान्त भर में सब से अधिक नम्बर प्राप्त किए और साईंस पढ़ने के लिए सेन्ट्रल म्योर कालिज प्रयाग में दाखिल होगया। दो वर्ष पश्चात् मास्टर साहब गरमियों की छुट्टी में डेरा दून की सैर करने गए थे वहां से हरिद्वार देखने को चले गए। हरिद्वार में जाकर उनका चित्त प्रसन्न नहीं हुआ क्योंकि श्रद्धा तो पहले ही नहीं थी पण्डों की करतूत से उनके चित्त में और भी ग्लानि होगई। वह वहां से वापिस होने ही को थे कि एक पंजाबी महाशय से मुलाकात होगई। पंजाबी महाशय ने परामर्श किया कि हृषीकेश चलिए वहां चल कर आनन्द मिलेगा। दोनों तांगे में बैठ कर हृषीकेश को चल दिए। वहां तांगे को छोड़कर लक्ष्मण झूले की तरफ बढ़े। तांगे में बात चीत करते समय पंजाबी महाशय को उनके विचारों का तो पता लग ही गया था कि वह ईश्वर को नहीं मानते और धर्म में इनका कुछ विश्वास भी नहीं है। अब उसे यह फिकर हुई कि यदि कोई अच्छे महात्मा मिल जावें तो इनको उपदेश दिलाकर श्रद्धालु बनाया जावे। वह दोनों झाड़ियों में घुस गए और एक घण्टे की खोज के पश्चात् इन्होंने एक महात्मा के दर्शन कर पाए। वह महात्मा कोपीन मात्र धारण किए, शरीर से कृश थे व ध्यानावस्थित बैठे थे यह दोनों जाकर मस्तक झुकाकर चुप चाप बैठ गए। इनको बैठे २ एक घण्टा बीत गया। बंगाली महाशय घबराए और चलने ही को थे कि महात्मा ने आंखें खोल दीं। इन्होंने फिर नमस्कार किया और सावधान होकर बैठ गए। पञ्जाबी ने ईश्वर के सम्बन्ध में बातें आरम्भ कीं। महात्मा उपदेश करने लगे। हेमचन्द्र बड़े ध्यान से सुनने लगा। बीच २ में प्रश्न भी करता जाता था। उपदेश होते २ चार घण्टे बीत गए। भूख और प्यास सब विदा

होगई। हेमचन्द्र चकोर की भान्ति टिकटिकी लगाए बैठा था। उसने कठिनाई से दस प्रश्न किए होंगे शेष समय शान्त चित्त से सुनता रहा। न मालूम महात्मा ने उसे क्या घोलकर पिला दिया कि उस दिन पीछे हेमचन्द्र ने साइंस की बातें करनी छोड़ दीं। वह मौन धारण किए रहने लगा। श्रेणी में जाकर पाठ तो पढ़ा देता था परन्तु न तो विज्ञान विशारदों के जिकर करता था और न ही विज्ञान के सम्बन्ध में कोई टीका टिप्पणी करता था। इस प्रकार एक वर्ष बीत गया। वह एकान्त सेवी होगया, बात चीत बिलकुल कम कर दी। सूर्योदय से पहले और सूर्योदय के पश्चात् बहुधा जंगल में अकेला घूमता या बैठा दिखाई देता था, श्रेणी में बैठ कर पाठ पढ़ाने की बजाय विद्यार्थियों से कह देता था कि आप ही तजरबा कर लो जो बात समझ में न आवे वह पूछ लेना। स्कूल के मास्टर उनकी इस दशा पर बहुत आश्चर्य करते परन्तु कोई भी कुछ भेद नहीं पासका। एक वर्ष समाप्त होने पर मौसमी छुट्टी आई और वह फिर हरिद्वार को गए। वहां हृषीकेश तक तो लोगों ने उनको जाते देखा परन्तु फिर पता नहीं मिला कि हेमचन्द्र बाबू कहां गए? स्कूल की छुट्टियां समाप्त होगई। सब मास्टरों ने आकर अपना २ काम सम्भाल लिया परन्तु हेम बाबू नहीं आए। बहुत तलाश की गई परन्तु वह नहीं मिले।

इस घटनाको १२वर्ष व्यतीत होगए हरीसिंह ने लण्डन विश्वविद्यालय से (Doctor of Science) की उपाधि प्राप्त करके कलकत्ता विश्व विद्यालय मेंप्रोफेसर का स्थान प्राप्त कर लिया था। उसको लोग डाक्टरसिंह के नाम से पुकारते थे। एक दिन प्रातः काल डाक्टरसिंह विक्टोरिया पार्क में हवा खाने गया था, वहां उसने एक साधू के पास बहुत आदमियों की भीड़ देखी। वह जाकर खड़ा होगया। वह महात्मा लोगों को पुरुष और प्रकृति के सम्बन्ध में कुछ समझा रहे थे। सिंह को बातों में रस आया और वह ध्यान से उपदेश सुनने लगा। उसका दिमाग उलटपुलटहोने लगा संशय और विपर्ययने चारों तरफ से घेर लिया। आत्मज्ञान के शांति दायक प्रवाह ने विज्ञान की शुष्क तर्क को बहाना आरंभ कर दिया। जनक की भांति वह यह सोचने लगा कि "यह सच्चा या वह सच्चा"। कुछ देर में भीड़ कम होनेलगी और परमहंस जी का उपदेश भी शांत हुआ। सिवाय डाक्टर सिंह के सब ही उठकर चले गये। जब एकांत मिला तो डाक्टर ने हाथ जोड़कर प्रार्थना की "यदि आपकी दया हो तो दो चार दिन सेवक को झोंपड़े पर निवास करना स्वीकार करें"। परमहंस जी ने कुछ उत्तर नहीं दिया। डाक्टर सिंह ने फिर आग्रह पूर्वक कहा 'महाराज! केवल सत्य का निर्णय करने के लिये ही मैं आप को कष्ट देने का अनुरोध कर रहा हूं मुझे कोई सांसारिक लालसा नहीं है। मकान शहर से दूर एकान्त में है और मैं अकेला ही हूं बाल बच्चों का झगड़ा नहीं है। मैं भी साधु ही हूं केवल इतना भेद है कि मैं प्रकृति और उसकी शक्ति का उपासक हूं और आप परमात्मा के दास हैं। मैं भौतिक ज्ञान के प्रकाश से संसार में सुख शान्ति होना सम्भव समझता हूं और आप भक्ति द्वारा संसार का कल्याण समझते हैं"।

परमहंस जी हरि ॐ कहकर उठ खड़े हुये।

डाक्टर ने टेक्सी वाले को बुलाया और दोनों बैठ कर शीघ्र बङ्गले पर पहुंच गये। अनुकूलता के अनुसार भोजन, स्नान और आसन का प्रबन्ध करके डाक्टर आज्ञा लेकर कालिज गया और (Dean) से ५ दिन की छुट्टी लेकर वापिस आगया। महात्मा जी दिन भर अपने स्वाध्याय व भजन में लगे रहे फिर शाम को ४ बजे कमरे से निकले। डाक्टर सिंह खड़ाऊं की खट खट सुन कर उनके पास आये। महात्मा जी बगीचे में पड़ी हुई आराम कुर्सी पर जा बैठे और डाक्टर को भी पास की कुर्सी पर बैठने के लिये कहा और प्रश्न करने की आज्ञा दी।

डा०–महाराज! कुछ पूछने से पहले मैं आप से क्षमा चाहता हूं क्योंकि तर्क के कारण बुद्धि में चंचलता और स्वभाव में उद्दण्डता आगई है।

महात्मा–कुछ चिन्ता नहीं तुम बालक की भान्ति निःसंकोच निर्भय और स्वतंत्रता से चाहे जो पूछो

डा०–अच्छा कृपा करके आप यह बतावें कि साधु बनने से पहले आप क्या काम करते थे और कहां रहते थे?

म०–यह प्रश्न तो अनावश्यक है। यती से न तो ऐसे प्रश्न पूछने चाहियें और न ही यती को इनका उत्तर देना चाहिए। नारद परिव्राजकोपनिषद् में लिखा है–

नाम गोत्रादि वरणं देशं कालं तथा कुलम्।
वयो वृत्तं मतं शीलं ख्यापयेन्नैव सयतिः॥

नाम, गोत्र, वरण, जन्मस्थान, कुल, आयु, विद्या, तप, शील आदि यति न बतावे।

डा०–अच्छा आपकी इच्छा मेरा अभिप्राय तो यही था कि आप की जैसी शकल सूरत के मेरे गुरु थे जो साधु बन गए थे कहीं आप वही तो नहीं है।

म०–वह हों या और हों इस ममता मोह में क्या रक्खा है? साधु तो सब के गुरु और सब के शिष्य होते हैं। समदृष्टि वाले के लिए कौन गुरु कौन चेला सब में निरञ्जन आप ही खेला। कुछ ज्ञान चर्चा चलाओ।

डा०–महाराज! साईंस के प्रताप से लोगों की बुद्धि का विकाश होरहा है, सुख की सामग्री बढ़ रही है, जो साधन कभी देवराज इन्द्र को प्राप्त थे वह साधारण मनुष्य को उपलब्ध हैं। प्राचीन समय में बड़े जप, तप से योग द्वारा सिद्धिएं प्राप्त करके हजारों मीलों के हालात जानने में कोई योगी समर्थ होते थे इस समय वह हालात कुछ पैसे खर्च करके प्रत्येक आदमी घर बैठे सुन सकता है। थोड़ी देर में हजारों मीलों से फोटो उतर कर आ सकते हैं। मनोविज्ञान के कालिज खुल रहे हैं, वहां फीस दाखिल करके कोई भी आदमी विद्या प्राप्त कर सकता है और उसके द्वारा दूसरे आदमियों के दिलों के हालात जान सकता है, उनका स्वभाव मालूम कर सकता है। ऐसे २ यंत्र बन गए हैं जो दूसरे के चित्त के खयालात को लिख सकते हैं। साथ ही यह आनन्द है कि न किसी गुरु की सेवा करनी पड़े, न भूख मरने के कठिन व्रत धारण करने हों और न ही किसी प्रकार का विधि निषेध का झगड़ा करना पड़े। सब बातें बड़ी आसानी और स्वतंत्रता से प्राप्त होरही हैं। मेरा तो अपना यह विचार है कि जितना संसार साईंस में उन्नति करेगा उतना ही सुख और शान्ति की ओर बढ़ेगा। सुख और शान्ति का जोड़ा है फिर परमात्मा भी अगर

कुछ होगा और कहीं रहता होगा तो मिल जावेगा। कृपा करके बताइये इसमें आपकी क्या सम्मति है?

म०–प्रिय सिंह! जो कुछ तुम कहते हो ठीक है। इस काल में भौतिक विज्ञान ने आश्चर्य जनक उन्नति की है और विज्ञान से संसार को कुछ बाह्य सुख की प्राप्ति भी हुई है परन्तु यह सब मदारी के तमाशे की भान्ति है, इसमें सच्चा सुख और शान्ति कहाँ? यह तो सुख की छाया मात्र है। इससे तो लोगों के चित्त अधिक चंचल और लुभायमान हुए हैं असन्तोष और व्यग्रता बढ़ी है, क्षणिक सुख की उपलब्धी और स्थायी दुःख की वृद्धि हुई है। यह नाटक के परदे के दृश्य हैं, देखने में सुन्दर, चित्ताकर्षक और तृप्ति दायक हैं परन्तु अन्तर में वेदना उत्पन्न करने वाले हैं। इनसे प्राप्त की हुई स्वतन्त्रता और उस का मूल्य इतना ही है जितना उत्तम रसयुक्त बूटियां लगे हुए तारों से घिरे हुए सुन्दर पार्क में कैदी पशुओं को होता है। इस माया के चक्र में स्वतंत्रता कहां? यह तो परतंत्रता का जाल है। साईंस की उन्नति के साथ तो दुःख, असन्तोष, अशान्ति और परतंत्रता की ही वृद्धि हुई है और होगी इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है।

डा०–महाराज! मेरा ज्ञान आपके ज्ञान से बिलकुल विपरीत है क्या मैं उलटे पथ पर हूं? मैंने अविवाहित रह कर निष्काम भाव से लोगों के हित के लिए ही साईंस पढ़ी और उसका प्रचार भी इसी अभिप्राय से कर रहा हूं। मेरे गुरु ने मुझे यही शिक्षा दी थी परन्तु वह तो साधु बनकर कहीं चले गए और मुझे इसी मार्ग में छोड़ गए। अब भी शिक्षित संसार में कुछ आदमी ऐसे हैं जो आत्मा और परमात्मा की बातें करते हैं और कहते हैं संसार में सुख व शान्ति के लिए अध्यात्म ज्ञान की आवश्यकता है परन्तु उनकी बातें खोखल सी मालूम होती हैं साईंस के बड़े २ दिग्गजों के मुकाबले में वह रूखी और निस्तार युक्तियां ही देते हैं कोई अनुभव की बात नहीं कहते और यह तो स्पष्ट ही है कि अध्यात्म ज्ञान जन साधारण की पहुंच से दूर है और इसमें तो कुछ भी सन्देह नहीं कि उस ज्ञान से जन साधारण वह लाभ नहीं उठा सकते जो कि साईंस, से इसके अतिरिक्त सब से भारी कठिनाई यह है कि इसका प्राप्त करना महान् कठिन है उपनिषद् कहती है कि यह क्षुरे की धार पर चलने से भी कठिन काम है और इन्द्र जैसे महान् पुरुष को भी १०१ वर्ष ब्रह्मचर्य्य करने के पश्चात् इसकी प्राप्ति हुई थी फिर भी मैंने अपना जीवन सत्य की खोज में लगाने का संकल्प कर लिया है इसलिए मैं उसके जानने का इच्छुक हूं यदि आप मेरे संशयों को निवृत्त करके मुझे वह मार्ग दिखा सकें तो अवश्य ही दया करें मैं अपने जीवन को आपके चरणों में समर्पण करके आज्ञानुसार कार्य करूंगा।

म०–प्रिय सिंह! धैर्य्य रक्खो तुम अपने प्रयोजन में सफल मनोरथ होगे। इस ज्ञान के लिए केवल सत्यान्वेषी की आवश्यकता है। यह मार्ग महान् कठिन भी है और अत्यन्त सरल भी है। सुख, शान्ति, ऐश्वर्य और आनन्द सब कुछ इसी से प्राप्त हो सकते हैं और जन साधारण की तो बात क्या है इस ज्ञान के विकाश से तो चर अचर सबको ही लाभ पहुंचता है इसके प्रकाश से सब ही प्रकाशित होते हैं इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है।

इतिहास इस का पूर्णतः साक्षी है। अच्छा अब सन्ध्या वन्दन का समय है कल फिर चर्चा करेंगे।

अपूर्ण

भगवद्भक्ति

[ले० श्री स्वामी पूज्य भोले बाबा जी]

उपवास निष्ठा।

सदाशिवं चिदानन्दं सदा सारल्यमण्डितम् ।
कुर्वन्नपि न कर्तारं तं भक्तं प्रणमाम्यहम् ॥

मंसाराम-महाराज! आज मैं उपवास के सम्बन्ध में आप के श्रीमुख से सुनना चाहता हूं, कृपया मेरा मनोरथ पूर्ण कीजिये।

मस्तराम-भाई मंसाराम! विद्या विना अभ्यास के नष्ट हो जाती है, धर्म दम्भ से अधर्म का फल देता है, ज्ञान तृष्णा से कपूर हो जाता है यानी भाग जाता है, तप कोप से क्षय हो जाता है, विक्षिप्त चित्तवालों को योग की सिद्धि नहीं होती, इसी प्रकार विना श्रद्धा के किया हुआ कोई कर्म फल दायक नहीं होता। श्रद्धा ही हवन है, श्रद्धा ही ज्ञान है, श्रद्धा ही ध्यान है, श्रद्धा ही दान, जप और तप है। श्रद्धा से सब कुछ प्राप्त होता है जो जिसकी श्रद्धा है, वह ही वह है' यह भगवान् का वचन है, चित्त की प्रसन्नता का नाम श्रद्धा है, श्रद्धा का बाल्यपन विश्वास है, श्रद्धा का यौवन प्रीति यानी अनुराग है, श्रद्धा की प्रौढ़ता निर्भरता है और श्रद्धा का बुढ़ापा ज्ञान है। वेदान्तसार में कहा है कि गुरु और वेदान्त वाक्यों में विश्वास होना श्रद्धा है। स्मृति में कहा है कि धर्म कार्यों का ज्ञान श्रद्धा है। देवल संहिता में कहा है कि सत्कार्य और अनसूया यानी दोष न देखना श्रद्धा है। गीता में कहा है कि श्रद्धावान् ज्ञान प्राप्त करता है। श्रद्धा से किया हुआ उपवास शीघ्र फल देता है।

हे मंसाराम-दिनरात में भोजन न करने का नाम उपवास है। शास्त्र में पवित्र दिनों में उपवास का विधान है। उप नाम निकट का है और वास नाम निवास का है। उपवास करने से, विष्णु के निकट वास होता है, इसलिये उपवास उपवास कहलाता है। निराहार उपवास का सहायक है। संयादि पूर्वक शास्त्र विधिसे उपवास करना चाहिये। श्रीकृष्ण जन्माष्टमी, श्रीरामनवमी, एकादशी और शिवरात्रि उपवास के मुख्य दिन हैं। इन सब का वृत्तांत संक्षेप से कहता हूं। ध्यान देकर सुनः-

श्री कृष्णजन्माष्टमी-भाद्र कृष्णाष्टमी श्रीकृष्ण भगवान् की जन्म तिथि है। सौर पुराण में कहा है-कृष्णाष्टमी पुण्य तिथि सर्व पापों को नाश करने वाली है। कृष्णाष्टमी का व्रत श्रेष्ठ है और सर्व कामनाओं की प्राप्ति रूप फल का देने वाला है।

श्रीरामनवमी-चैत्र शुक्लानवमी श्री राम की जन्मतिथि है। श्रीराम भक्तितरङ्गिणी में कहा कि चैत्र मास में नवमी के शुभदिन अति पुण्य रूप सुन्दर लग्न में स्वयं हरि राम उत्पन्न हुये। पुनर्वसु नक्षत्र युक्त, सर्व कामनाओं की देने वाली वह तिथि श्रीरामनवमी कहलाती है, यह कोटि सूर्य से अधिक है। इस महा पुण्यदिन में राम के उद्देश से भक्ति पूर्वक जो कोई कर्म किया जाता है, वह अक्षय फल दाता होता है। उपवास, जागरण, पितरोंका तर्पण मोक्ष प्राप्तिकी इच्छा वालों को इस दिन करना

चाहिये। इस महा पुण्य दिनमें श्रीराम के उद्देश्य से एकांत में बैठ कर दशमी आने तक भक्ति पूर्वक जप करे, यह एक पुरश्चरण होजाता है, दशमी के दिन ब्राह्मणों को भोजन करावे। बहुत प्रकार के भक्ष्य और भोज्य सहित भक्ति पूर्वक दक्षिणा देवे, ऐसा करने से अधिकारी कृत कृत्य होजाता है और राम प्रसन्न होते हैं।

एकादशी–यह तिथि विशेष है। शुक्लपक्ष में सूर्य मंडल का निकलना रूप ग्यारह कला की क्रिया रूप है और कृष्ण पक्ष में सूर्य मंडल में चन्द्र मंडल का प्रवेश रूप ग्यारह कला की क्रिया रूप है यानी शुक्लपक्ष में चन्द्र की ग्यारह कला सूर्य में से निकल आती हैं और कृष्ण पक्ष में ग्यारह कला सूर्य में दब जाती है। एकादशी का नाम हरिवासर और हरि दिन भी है। कांसी के पात्र में भोजन, मांस, मसूर, शहत, मिथ्या भाषण, दूसरी बार भोजन, आयास यानी श्रम ये सब दशमी के दिन वर्जित हैं, पारण के दिन भी ये सब निषिद्ध द्रव्य वर्जित हैं। दोनों पक्षों की एकादशी के दिन निराहार और समाहित रहे। विधि पूर्वक स्नान करके, धुले वस्त्र पहिन कर, जितेन्द्रिय तथा समाहित होकर पुष्प, गंध, धूप, दीप, नैवेद्यादि उपहारों से, जप से, होम से, प्रदक्षिणा से, नाना प्रकार के स्तोत्रों से, मनोरम नृत्य गीत और बाजों से विष्णु भगवान्का विधि पूर्वक पूजन करे और रात्रि को जागरण करे। शहत, मांस, सुरा, तैल, व्यायाम, क्रोध, मैथुन, पराया अन्न, कांसी का पात्र, ताम्बूल, लोभ, निर्माल्य का लांघना, इन बारह को वैष्णव द्वादशी के दिन त्याग देवे। वितथ भाषण, दूसरे का मारना, दिनको सोना, अंजन, मसूर, द्यूत, हिंसा और चने इत्यादि भी वर्जित हैं।

शिवरात्रिः–इस का नाम शिव चतुर्दशी है, माघ मास के अन्त में अथवा फाल्गुन के आदि में जो कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी है वह शिवरात्रि कहलाती है। इसमें उपवास प्रधान है। शंकर का कथन है कि स्नान से, वस्त्रों से, धूप से, अर्चा से और पुष्पों से, मैं ऐसा संतुष्ट नहीं होता जैसा कि उपवास से होता हूं। स्कन्द पुराण में कहा है कि शिव प्रेमियों को शिव रात्रि की रात्रि को प्रहर २ में शिव को स्नान कराना चाहिये। दूध से प्रथम स्नान, दहीसे दूसरा स्नान करावे। तीसरे प्रहर में घी से और चौथे प्रहर में मधु से स्नान करावे। शिव रात्रि के उपवास के प्रभाव से, जागरण के बल से और शिवलिंग के पूजन से अधिकारी अक्षय लोकों को और शिव की सायुज्यता को प्राप्त होता है।

हे मंसाराम! सर्वदा ही विष्णु के समीप वास करने का प्रयोजन है और पुण्य दिन में उपवास करना विष्णु के समीप वास करने का साधन है। पुण्य जनक व्रतों के नाम ये हैं–(१) अक्षय तृतीया, (२) नृसिंह चतुर्दशी, (३) त्रिलोचनाष्टमी, (४) सावित्री चतुर्दशी, (५) उमाचतुर्थी, (६) शयनैकादशी, (७) कृष्णजन्माष्टमी, (८) शिवाचतुर्थी, (९) राधाष्टमी, (१०) पार्श्व परिवर्तन व्रत, (११) अनन्त चतुर्दशी (१२) गणेश चतुर्थी, (१३) महाष्टमी, (१४) दुर्गानवमी, (१५) उत्थानैकादशी, (१६) अखंडा द्वादशी, (१७) श्री पंचमी, (१८) भीमैकादशी, (१९) शिव रात्री, (२०) गोविन्द द्वादशी, (२१) श्री रामनवमी, ये सब पुण्य दिन हैं। इनके सिवाय अमावस्या, द्वादशी और संक्रान्ति

ये तिथि विशेष रूप से प्रशस्त हैं और रविवार भी पुण्य दिन है। इनमें स्नान, जप, होम, देवताओं का पूजन, उपवास और दान मुख्य और पावन माना गया है। तिथि तत्व में यह संवर्त का वचन है।

हे मंसाराम! भगवान् के जन्मोत्सव को उमंग जैसी भक्तों के चित्त में होती है, उसका वर्णन कोई कर नहीं सक्ता। उमंग, उत्साह अपने भाव और अपनी २ भक्ति के आधीन है बहुत से प्रेमियों का ऐसा भाव देखने में आया कि पुत्र, पौत्र जन्म अथवा विवाह में यदि एक रुपया खर्च करें तो भगवज्जन्मोत्सव में उससे दश गुणा खर्च करें, इतनी धूम धाम करें, और इतना आनन्द मनावें कि अनायास ही भगवच्चरणों में निश्चय मन लगजाय। जो लोग नियम से एकादशी का व्रत करते हैं, उनका यह नियम है कि नवमी के दिन एक समय हविष्यान्न जैसे चावल, गेहूं, यव, मूग, तिल, घी खाते हैं, दशमी के दिन एक समय फलाहार करते हैं और एकादशी को निर्जल व्रत करते हैं। व्रत का समस्त दिन भगवद्भजन में व्यतीत करते हैं, दूसरे विषय में चित्त नहीं जाने देते। एकांत में वास करते हैं, दिन में नहीं सोते, निषिद्ध वस्तुयें उपयोग में नहीं लाते, रात्रि को जागरण करते हैं, यदि किसी कारण से भगवत्कीर्तन और भगवद्भक्तों का समाज प्राप्त न हो, तो आप अकेले भगवद्भजन में जागते रहते हैं, द्वादशी के दिन भजन पूजन के पश्चात् ब्राह्मणों, भगवद्भक्तों को यथा शक्ति प्रसाद भोजन करा के, रुपये, अन्न, वस्त्र यथा श्रद्धा दान देकर और उसे व्रत का फल भगवत् को अर्पण करके आप भोजन करते हैं। हे मंसाराम! यदि निर्जल व्रत न हो सके और निर्बलता से भगवद्भजन में बाधा दिखायी दे तो ऐसी दशा में इतना फलाहार, दूध अथवा जल लेना उचित है कि जागरण और भगवद्भजन का सामर्थ्य बना रहे। यदि एकादशी व्रत के दिन शरीर ज्वरादिक से क्लेशित हो जाये तो गेहूं और मूंग का भोजन वर्जित नहीं है। जो इस प्रकार के नियम और भगवत्प्रीति से व्रत करते हैं, उनकी मुक्ति और सद्गति में क्या सन्देह है? कुछ भी नहीं! एकादशी व्रत का जन्म, फल और सद्गति होने का हेतु विस्तार सहित एकादशी माहात्म्य में लिखा है, इसलिये विशेष कथन करने का प्रयोजन नहीं है, जितनी बातें प्रयोजन की हैं, वे सब बता ही दीं।

हे मंसाराम! आज कल हम लोगों के व्रत करने का यह वृत्तांत है कि व्रत में प्रीति तो ऐसी है कि एकादशी की याद ही नहीं रहती। यदि याद आगई तो दशमी के दिन नाक तक पेट भरके खाया, फिर चिंता हुई कि कल क्या २ फलाहार होगा? जब सवेरा हुआ तो फलाहार बनना आरंभ हुआ, दूध, पेड़े, बर्फी, रबड़ी, कूट की पूरियां, मोहन भोग तैयार कराया, दो पहर से पहिले ही पालती मारकर खाने को बैठ गये और इतना खाया कि दशमी को अथवा अन्य किसी दिन भी न खाया होगा, पश्चात् पलंग पर लेट कर आराम करने लगे! गरिष्ठ तीक्ष्ण भोजन खाया था, कई बार पानी पिया, पेट फूल गया, पड़े २ चार पाई तोड़ा किये। अभी भोजन पचा नहीं है कि उस ऋतु के मेवा आदि मंगा कर चक्खे, चक्खे क्या, खूब खाये! रात हुई कि दूध पिया, पेड़े खाये, बस फिर इतनी शीघ्रता से जाकर खाट पकड़ी कि एक क्षण भी बैठ न सके। सारी रात गदहे के समान लोटते रहे, अगले दिन

चारघड़ी दिन चढ़े खाट छोड़ी ! भजन इत्यादि की तो बात ही क्या है, यह भी न बना कि एकबार भी भगवत् का नाम फूटे मुख से निकला हो ! वाह ! वा ! यह तो व्रत और भजन ! फिर भी सद्गति और भगवद्धाम की चाहना ! धिक्कार ! हजार बार धिक्कार ! ऐसे जन्म पर ऐसी समझ पर और ऐसी अश्रद्धा पर ! अपनी ऐसी दुर्दशा देख कर एक भक्त अपने मन को इस प्रकार समझाता है-

अरे पापी मन ! मूर्ख न बन ! अब भी समझ, विचार कर कि भगवच्चरणों से विमुख होकर किसी ने भी सुख नहीं पाया है, यदि तू इस समाज में स्थिर होकर लग जाय, तो तेरे उद्धार में क्या संदेह है ? कुछ भी संदेह नहीं है-

समाज-महाराजाधिराज दशरथजी का परम सुन्दर मन्दिर है, दर, दीवार, धरती छत सुवर्ण मयी रूपामयी है, उनमें हीरा, लाल, पन्ना, चुन्नराज, नीलम आदि जड़े हुये हैं वहां राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न चारों भाई खेल रहे हैं और अपने बाल चरित्रों से कौशल्या, कैकेयी, सुमित्रा आदि माताओं और महाराज दशरथ को परमानन्द से पूर्ण कर रहे हैं ! ऐसा मालूम होता है मानों सायुज्य, सारूप्य, सामीप्य, सालोक्य चारों मुक्ति अथवा मोक्ष, धर्म अर्थ, काम चारों फल अथवा वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध चारों व्यूह अथवा परा परम प्रेमा, प्रेमा, नवधा चारों उपासना, अथवा रूप, लीला, धाम, नाम चारों साक्षात् रूप धारण करके भक्तों के मनों को परम आह्लाद से पूर्ण कर रहे हैं ! कभी दशरथ महाराज से घोड़ों पर चढ़ाने और तीर कमान मंगा देने की हठ करते हैं, कभी दीवारों में विचित्र रंगों के चित्र और जड़ाऊ सुनहरे बेल बूटे देख कर प्रसन्न होते हैं और माताओं से पूछते हैं कि ये क्या हैं ? कभी रत्नों में अपने प्रति बिम्बों को देख कर पूछते हैं कि ये किस के लड़के हैं और कहां से आये हैं ? कभी खाते खेलते और बखेरते हैं और फिरते हैं और फिर बटोर कर पक्षियों को बुला कर खिलाते हैं ! कभी पक्षियों के पकड़ने को दौड़ते हैं और जब वे उड़जाते हैं तो माताओं से हठ करते हैं कि तुम पकड़ कर लादो ! कभी चारों भाई परस्पर हाथ पकड़ कर मंडल बना कर नाचते हैं ! कभी रात के समय चन्द्रमा को देख कर दशरथ महाराज से हठ करते हैं कि यह चन्द्रमा नीचे मंगा दो ! जब नहीं मंगाते, तो रोते हैं और हठ करते हैं ! वसिष्ठ जी आकर दर्पण को चन्द्र के सामने रख कर कहते हैं कि देखो, वह चन्द्रमा नीचे बुला दिया है, तब चारों भाई प्रसन्न होकर हंसते हैं और बदन में फूले नहीं समाते। भगवान् के ऐसे अद्भुत और परम मनोहर चरित्र हैं कि उनको देख कर ब्रह्मा शिवादि कभी तो परम आनन्द में मग्न हो जाते हैं और कभी मोह के जाल में फंस जाते हैं। चारों भाइयों के मुख की शोभा ऐसी है, जिसको देख कर आनन्द होता है ! शोभा और शृंगार भाल के तिलक की श्री पर न्योछावर होकर देखते २ वे सुध होजाते हैं ! जरदोजी के काम की गोठे पटे और जवाहरात से भरी हुई टोपी शिरपर है। घुंघर वाली अलकें-जुल्फे कपोलों पर छुटी हुई हैं, भाल पर गोरोचन का तिलक है। कानों में छोटे २ जड़ाऊ कुंडल हैं, कुंडलों के पास झुमके हैं, नाक में बुलाक है, बुलाक में सज्जा पड़ा हुआ है, झलकदार कपोलों पर डिठोना लगा हुआ है कि किसीकी दृष्टि न लग जाय, गले में कंठी है, कंठी के नीचे जड़ाऊ कठली

हैं, कठले के नीचे बघनखा-सिंह के नखों का भूषण है, बघनखे के नीचे जगुन शोभा देरहा है, भुजाओं में बाजुबन्द हैं, हाथ में पहुंची हैं, पहुंचियों के ऊपर कड़े हैं, चरण कमलों में घुंघुरु हैं, घुंघुरुओं के ऊपर झांझने हैं, अति सुकुमार शरीरों पर पीत हरित, धानी और लाल महीन कुर्ते हैं, कौशल्या, कैकेयी, सुमित्रा आदि माता बाल चरित्रों को देख २ कर आनन्द में मग्न और बेसुध हो २ जाती हैं और अपने भाग्य की बडाई करती हैं।

प्रभु के होजाओ

[ले० श्री स्वामी आत्मानन्द जी]

महान प्रभु कहते हैं कि तुम मेरे होजाओ इससे जगत् को मैं तुममय बनादूंगा।

एक परम भक्त बड़ा वैभवशाली था, उसका ठाट बाट बहुत अधिक था और उसका चमत्कार भी आश्चर्य में डालने वाला था। श्रीमानों की और अधिकारियों की उसके यहां भीड़ लगी रहती थी, उस की पाल को उठाने के लिये बड़े बड़े लोग तैयार होजाते थे। उसके यहां सदाव्रत चला करता था, अनेकों राजा उसके चेले थे और बहुत से राजा अपने मन में इच्छा रखते थे कि यह भक्त हमारे यहां आकर रहे तो अच्छा हो। जो कुछ वे कहते थे उसे करने के लिये लाखों मनुष्य तैयार होजाते थे। यदि कोई आफत आपड़ती थी तो उसके बदले में हजारों मनुष्य अपना सिर कटाने के लिये तैयार हो जाते थे। लक्ष्मी तो उसके पैर पर लोटती थी, भूत भविष्य की बातें वे बता सकते थे और फूंककर अथवा विभूति देकर असाध्य रोग को भी अच्छा करदेते थे। यह सब देखकर सब लोग बड़े अचम्भित होते।

कुछ काल अनन्तर इस भक्त के पुराने जान पहिचान वाले मनुष्य ने उनसे पूछा कि महाराज! गोली और गुली डंडा खेलने के लिये आप स्कूल से भाग जाते थे और जामुन खाने के लिये नदीतट पर चले जाया करते थे, वह बात क्या याद है? एक समय लकड़ी खेलते समय लकड़ी छूट कर आप के रान पर पड़गई थी तब धीरे धीरे मैंने आप को घर पहुंचाया था वह क्या स्मरण है? एक समय मैं तालाब में डूब रहाथा उस समय आप ने मुझे बचाया था वह क्या याद है? एक समय हम लोगों ने होली में बड़ा उपद्रव मचाया था जिससे पुलिस ने हमें पकड़लिया और पंडित जी ने हमें पीटा भी था वह क्या याद है? तब आप इस स्थान पर कैसे पहुंच गये और मैं जैसा का तैसा क्यों रह गया? इस का कारण क्या है? महाराज! इसका भेद मुझे समझाइये।

तब उस भक्त ने कहा-भाई, यह सब बात सत्य है, कि तु इसके बाद मुझे एक गुरु जी मिल गये जिससे मेरा चक्र मंडल बदल गया और तुम जैसे के तैसे रह गये। तुम जगत् की वस्तुओं को लेकर बैठ गये और मैं ईश्वर को लेकर बैठ गया, यही तुम्हारे और हमारे में अन्तर है और कुछ भी नहीं है। मैंने प्रभु को प्रथम स्थान दिया है जिससे वह मेरे पीछे २ घूमता है और तुमने स्वार्थ को प्रथम स्थान दिया है जिससे तुम्हें स्वार्थ के पीछे २ भटकना पड़ता है। तुम घर द्वार वाले हो जिस से

तुम्हें घर घर रोना पड़ता है और विश्वम्भर नाथ के नाम के ऊपर उनकी महिमा समझ कर घर छोड़ दिया है जिससे संसार मेरा घर होगया है। जो बुद्धि से परे है, जिसकी सीमा नहीं है, जिसका पार नहीं पाया जासकता, जो ध्यान में भी नहीं आसकता, ऐसे महान् प्रभु के पवित्र नामपर अचल विश्वास कर मैंने अपना सुख छोड़ा है जिससे दूसरों के दुखों को दूर कर सकता हूं। अपनी इच्छा का त्याग कर भगवत् इच्छा के अनुसार रहता हूं जिससे ऋद्धि सिद्धि अपने आप ही चली आती हैं। पहिले ही से अपनी इच्छाओं को भजनकी आग में जला डाला है इससे जीवों के कल्याणार्थ यदि कोई इच्छा करता हूं तो वह पूर्ण होती है। भाई, मैंने स्वाद छोड़ा है इससे मुझे अमृत मिलता है, कुछ मांगता नहीं इससे सब कुछ मिलता है। मैं स्त्रियों को कुदृष्टि से नहीं देखता जिससे रानियां भी दासी बन मेरी सेवा करती हैं, मैं दूसरे का धन लेने की इच्छा नहीं करता इस से लक्ष्मी स्वयं मेरे पास चली आती है। मैंने पक्षपात् छोड़ दिया है जिससे सब पर विजय प्राप्त कर सकता हूं और सर्व शक्तिमान् अनन्त ब्रह्मांड के नाथ की शरण में जाकर सब कुछ छोड़ दिया है जिससे सब कुछ मिल सकता है, क्योंकि त्याग में ही तीनों लोक हैं ऐसा वेदमें कहा है और प्रभु को अपनाने के लिये मैंने सबका त्याग कर दिया है, इससे मैं महात्मा हो गया हूं। तुम्हें सांसारिक सौन्दर्य के स्वामी श्यामसुन्दर की अपेक्षा तुम्हें स्त्रियां अधिक अच्छी मालूम होती हैं इससे तुम्हें दुःख भोगना पड़ता है। लक्ष्मी के पति अनन्त ब्रह्मांड के नाथ की अपेक्षा धन तुम्हें अधिक भाता है जिससे तुम्हें गरीब बनना पड़ता है। अन्तःकरण की स्वाभाविक अखंड पवित्रता की अपेक्षा तुम्हें क्षणभंगुर विकार अधिक अच्छा मालूम होता है जिससे तुम्हें हैरान होना पड़ता है। कोटि कोटि जीवों को पैदा करने वाले तथा तुम्हें और तुम्हारे कुटुम्ब को जीवन देने वाले परम कृपालु परमात्मा की अपेक्षा लड़का अधिक प्रिय अच्छा लगता है जिससे तुम्हें रोना पड़ता है। सर्व शक्तिमान् पवित्र पिता परमात्मा के सर्वोत्तम चरित्र का गुण गानकरने की अपेक्षा गांव के किस्से कहानी तुम्हें अधिक अच्छे लगते हैं इस से तुम इतने से ही संतुष्ट हो जाते हो! देवों के देव, काल के काल और भय के भय ईश्वर से तुम डरते नहीं जिससे तुम्हें दूसरे लोगों से, विवेक से, कानून से, वस्तु से, परछाई से तथा अपनी ही कल्पनाओं से डरना पड़ता है। अखंड आनन्द रूप महा मंगलकारी, शांतिदाता परम कृपालु परमात्मा के सुख की अपेक्षा क्षणभर में विष्टा हो जाने वाले पदार्थों को खाने पीने में तुम्हें अधिक सुख मिलता है जिससे तुम्हें रोग होता है और अजरामर आदि अन्त रहित पुराण पुरुष नारायण की सेवा में अनन्त काल तक रहने के आनन्द की अपेक्षा क्षण भंगुर देह तुम्हें अधिक अच्छी मालूम होती है, जिससे तुम्हें माया का गुलाम बनना पड़ता है।

भाई, हम दोनों में यही अन्तर है, इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं है। मैं कुछ स्वर्ग में से आया नहीं हूं और न तुम नरक में से ही आये हो। मैं न देव हूं और न तुम राक्षस, मैं न कुछ आत्मा हूं और न तुम अनात्मा हो। यह सब कुछ नहीं है हम सब एक समान ही मनुष्य हैं। हम सब एक ही पिता के बालक हैं और संसार के हम सब मनुष्य,

मन बुद्धि और आत्मा वाले हैं तथा ईश्वर के कृपा पात्र हैं, इससे यदि तुम प्रभु के हो जाओगे तो प्रभु तुम्हारा होजायगा। भाई ? यह बहुत ही सरल बात है। केवल यह नौका भेद है। जरासा समझ कर हिम्मत करो तो इस नौका को खसकते कुछ भी देर न लगेगी। प्रभु तो यह कहते ही हैं कि तुम मेरे होजाओ तो जगत् को मैं तुम्हारे सुपुर्द करदूंगा, इससे यदि संसार पर अपना अधिकार जमाना हो तो तुम प्रभु के हो जाओ! तुम प्रभु के होजाओ!! तुम प्रभु के होजाओ!!!

प्रिय पाठको! भक्तका मित्र भक्त की बात सुनकर दृढ़ प्रतिज्ञा करके ईश्वर शरण होगया और जीते हुए ही अत्यानन्द को प्राप्त कर अन्त में भगवत् के स्वरूप को प्राप्त हुआ इसी प्रकार आप भी आज यह दृढ़ प्रतिज्ञा करो कि हमभी ईश्वर शरण हो यानी अब तो प्रभु के हो कर ही रहेंगे इससे ईश्वर, जगदाधार, सच्चिदानन्द, विश्वंभर, पतित पावन, अविनाशी- घट घट वासी, अंतर्यामी, चिद्घन स्वामी के स्वरूप को अन्त में प्राप्त हो जायं। दृढ़ निश्चय करो। करो!! अवश्य करो!!! कि हम प्रभु के ही होकर रहेंगे। मनुष्य शरीर की प्राप्ति को साफल्य करेंगे। श्री गोस्वामी तुलसी दास जी का वचन "देह धरे का यह फल भाई, भजिय राम सब काम बिहाई।" इसको सफल करेंगे! करेंगे!! अवश्य करेंगे!!! अनेक संकटों के आने पर भी सब को सहन करते हुए अब तो प्रभु के ही होकर रहेंगे।

प्राप्ति स्वीकार।

गङ्गा मासिक-के तीन अङ्क प्राप्त हुए। बिहार जैसे हिन्दी भाषा भाषी प्रान्त में गङ्गा एक उच्च-कोटि के मासिक पत्र की अत्यन्त आवश्यकता थी। अतएव इसके संचालक जनता के धन्यवाद के पात्र हैं गङ्गा के रूप व रंग दोनों ही सराहनीय हैं। चित्र तो बहुत ही सुन्दर और भावमय व चित्ताकर्षक हैं। धर्म, विज्ञान, इतिहास, समाज सुधार, साहित्य, दर्शन शास्त्र आदि सब ही आवश्यक विषयों पर उत्तम लेख प्रकाशित हुए हैं। इसके सम्पादक अनुभवी, साहित्य सेवी, परिश्रमी और बड़े उत्साही सज्जन हैं। एक प्रतिष्ठित महाराज कुंवर की संरक्षकता के कारण आर्थिक स्थिति भी अच्छी रहने की आशा है। बिहार प्रान्त में इस उत्तम पत्र के प्रभाव से जनता के जीवन में बहुत विकाश होगा और यह पत्र शीघ्र ही सार्वदेशिक ख्याति प्राप्त करने में सफल होगा। मूल्य ५) रुपया ठीक है। हम गङ्गा का हृदय से स्वागत करते हैं। यह कृष्ण गढ़ सुलतानगंज (भागलपुर) से प्रकाशित होती है।

श्रीकृष्ण कथा-प्रथमभाग, रचियिता श्रीरसिकेन्द्र प्रकाशक पं० जगदेव पाण्डेय पुस्तक विक्रेता मुंगेर, मूल्य ।≠) इस में यदुवंश वर्णन, कंस जन्म, कंस का अत्याचार, बलराम जन्म, कृष्णावतार, आदि विषयों पर सुन्दर पद्य रचना की गई है।

होली।

[ले० श्री मदन गोपाल जी सिंहल]

होली का दिवस देख वृषभानु लली ब्रज-
वीथन पै आई साथ सखिन की टोली है।
केसर के बारि की है टोकनियां साथलिये,

हाथ पिचकारी गल अबीर की झोली है।
गैल में अकेले जाते श्याम लख दौर पड़ी,
गैल रोक ठाढी भई थामों बर जोरी है।
बोली सब, आज सारे बदले चुकायें लेंगी,
दौरे कहां जात ठैरो लला आज होरी है, ॥
ऐसो दृश्य देख श्याम चंचलता भूल गये,
बोल उठे घबराके 'कैसी ये ठठोली है।
वृजराज कुँवर मैं, ग्वालन की छोरी तुम,
मेरे संग उचित न ऐसो जोरा जोरी है॥
श्याम थे अकेले वहां उनकी सुने था कौन,
मली गोपियों ने कृष्ण श्याम मुख रोली है।
रंग में नवाये दियो मार मार पिचकारी,
कान्ह गोपियों में मची ऐसे वृज-होली है॥

भजन

ईश्वर मोरी नैया पार लगादे॥
गहरी नदियां नाव पुरानी, एक बर हाथ लगादे॥१
बड़ी देर की आई किनारे, एकबर दरश दिखादे॥२
ना बादबान चापू ना बल्ली, हमको वेग चितादे॥३
सूरश्याम चरणन की महिमा, एक बर हमें लखादे॥

२

तुम तजि और कौन पै जाऊं॥
काके द्वार जाय सिर नाऊं, पर हथ कहां बिकाऊं॥
ऐसो को दाता है समरथ, जाके दिये अघाऊं॥२॥
अन्तकाल तुमरो सुमरण गति, अन्त कहूं नहिं पाऊं॥
रंक अयाची कियो सुदामा दियो अभय पद ठाऊं॥
कामधेनु चिन्तामणि दीनो, कल्प वृक्ष तरु छाऊं॥
भव सागर अति देख भयानक, मन में अधिक डराऊं॥
कीजे कृपा सुमिर अपनो प्रण, सूरदास बलि जाऊं॥

३

बहुत दिन जीवो पपीहा प्यारो॥
बासर रैन नाम नाम लै बोलत,
भयो विरह ज्वर कारो॥१॥
आपु दुखित पर दुखित जान जिय,
चातक नाम तुम्हारो॥२॥
देखो सकल विचार सखी जिय,
बिछुरन को दुख न्यारो॥३॥
जाहि लगै सोई पै जानै,
प्रेम बान अनियारो॥४॥
सूरदास प्रभु स्वांति बूंद लगि,
तज्यो सिन्धु करि खारो॥५॥

४

सांई दरजी का कोइ मरम न पावा॥
पानों की सुई पवन कै धागा,
अष्टमास नव सीयत लागा॥१॥
पांच पेवंद की बनी रे गुदरिया,
तामें हीरा लाल लगावा॥२॥
रतन जतन का मुकुट बनावा,
प्रान पुरुष को ले पहिरावा॥३॥
साहेब कबीर अस दरजी पाया,
बड़े भाग गुरु नाम लखावा॥४॥

५

ऐसी रहनि रहै बैरागी॥
सदा उदास रहै माया से, सत्त नाम अनुरागी॥१
छिमा की कंठी सील सरौनो, सुरति सुमिरनी जागी
टोपो अभय भक्ति माथे पर, काल कल्पना त्यागी॥
ज्ञान गूदरी मुक्ति मेखला, सहज सुई लै तागी॥४॥
जुक्ति जमात कूबरी करनो, अनहद धुनि लौ लागी॥
सब्द अधार अधारी कहिये, भीख दया की मांगी॥
कहैं कबीर प्रीति सतगुरु से, सदा निरन्तर लागी॥